

जैन रामायण ग्रन्थावली : भाग : ६

लव-कुश

लेखक :

मुनिराज श्री भद्रगुप्त विजयजी

हिन्दी अनुवाद :

श्रीयुत नानालाल रुनवाल
झाबुआ [म० प्र०]

श्री विश्व कल्याण प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक :
श्री विश्व कल्याण प्रकाशन
आत्मानन्द जैन सभा भवन,
घी वालों का रास्ता,
जयपुर (राज०)





मानद मंत्री :
हीराचन्द बैद
पारसमल कटारिया



वि० सं० २०३०
प्रति : १०००



मूल्य : ३/ रुपया



मुद्रक :
मातृभूमि प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर।



नैवेध :

श्री खरतरगच्छीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर

श्री जैन रामायण ग्रन्थावली का यह छठा भाग प्रकाशित हुआ है, अब सातवां भाग 'राम निर्वाण' भी प्रकाशित हो जायेगा। सातवें भाग में सम्पूर्ण जैन रामायण का समावेश हुआ है। हिन्दी भाषा में इस प्रकार 'जैन रामायण' का प्रथम वार ही प्रकाशन हुआ है।

श्री विश्व कल्याण प्रकाशन जयपुर ने हिन्दी साहित्य की पंचवर्षीय योजना बनायी और परमात्मा जिनेश्वर देव की परम कृपा से यह योजना पूर्ण होने जा रही है। हिन्दी भाषी जनता ने इस योजना को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दिया। ५०० से ज्यादा सदस्य बन गये और क्रमशः किताबें प्रकाशित होती गयी।

कुछ किताबों का पुनः मुद्रण भी हो रहा है : हमारी ऐसी धारणा है कि क्रमशः सब किताबों का पुनः मुद्रण कराना ही पड़ेगा। किताबें इतनी लोकप्रिय बनती जा रही हैं।

यदि आप इस पंचवर्षीय योजना के सदस्य नहीं बने हों तो अब भी बन जाइये और ३१) रुपये में २० किताबें प्राप्त कर लीजिये।

मानद मन्त्री

१२–६–७३
जयपुर

हमारा धार्मिक साहित्य

(१) ज्ञान सागर : भाग : १
(२) ज्ञान सागर : भाग : २
(३) लंकापति [जैन रामायण : भाग : १]
(४) अंजना „ भाग : २
(५) अयोध्यापति „ भाग : ३
(६) वनवास „ भाग : ४
(७) युद्ध और मुक्ति „ भाग : ५
(८) लव कुश „ भाग : ६
(९) राम निर्वाण „ भाग : ७
(१०) वासना और भावना [प्रवचन]
(११) तीन तारे [प्रवचन]
(१२) रामायण में जीवन दृष्टि [प्रवचन]
(१३) भव भ्रमण
(१४) जीवन वैभव
(१५) जय शंखेश्वर
(१६) पथ के प्रदीप
(१७) अन्तरनाद
(१८) प्रकाश के पथ पर
(१९) प्रिय कहानियां, भाग : १
(२०) प्रिय कहानियां भाग : २

१ : लव-कुश

स्वजन संयोग

संयोग के पश्चात् वियोग की कथा !
वियोग के पश्चात् संयोग की कथा !!

अहा, वर्षों के विरह के पश्चात् आज संयोग होने वाला है ... भाइयों का भाइयों के साथ, पुत्रों का माताओं के साथ और प्रजा का अपने प्रिय राजा के साथ। संयोग की कल्पना में भी रोमांच होता है, ऐसे अकथनीय रोमांच का भरत, शत्रुघ्न अथवा कौशल्या, सुमित्रा को ही अनुभव हो रहा था, यह बात नहीं है; अयोध्या की ओर तीव्रगति से आने वाले पुष्पक विमान में आरूढ़ श्रीराम, लक्ष्मण और देवी सीता को भी ऐसा रोमांच अनुभव हो रहा था। और तो ठीक, पर कैकेयी भी आन्तरिक आनन्द की अनुभूति कर रही थी। अयोध्या की प्रजा ने नगर के प्रत्येक मार्ग को, प्रत्येक मकान और महल को खूब सजाया था।

आजन्म मातृभक्त राम और लक्ष्मण के हृदय मातृ-दर्शन एवं मातृ-स्पर्श के लिए कितने आतुर हो रहे होंगे, इसकी कल्पना मातृ-भक्त पुत्र के अतिरिक्त और कौन कर सकता है। आजन्म मातृ-भक्त भरत के हृदय स्पन्दनों का संवेदन कौन कर सकता है। वस्तुतः आज अयोध्या के प्राण आनन्दातिरेक से परिस्पन्दित हो रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो आनन्द स्वयं मूर्तिमान होकर उत्सवमग्न हो रहा था, अयोध्या की गली-गली में क्रीड़ा कर रहा था।

लाखों प्रजाजनों का समूह अयोध्या के बाह्य प्रदेश में उमड़ रहा था। भरत और शत्रुघ्न हाथी पर आरूढ़ होकर पुष्पक विमान के आगमन की दिशा में आगे बढ़ रहे थे। राज्य के मन्त्री एवं अधिकारी भी भरत, शत्रुघ्न का अनुसरण कर रहे थे।

सूर्योदय होते ही आकाश-मार्ग पक्षियों के कलरव से मुखरित हो उठा। सभी की दृष्टि आकाश की ओर लगी हुई थी। जिस विमान की दन्तकथायें लोग सुन चुके थे, उसी पुष्पक विमान को अपनी स्वयं आँखों से देखने की प्रजाजनों को उत्कण्ठा हो रही थी। उसी समय क्षितिज पर एक बिन्दू दिखलाई पड़ा गति करता हुआ यह बिन्दू बड़ा होता जा रहा था कुछ ही क्षणों में यह बिन्दू विमान बन गया। वह अयोध्या की ओर ही आ रहा था, प्रजाजन श्री राम के जय जयकार से आकाश को गुंजायमान करने लगे।

पुष्पक विमान ज्यों-ज्यों निकट आता गया, त्यों-त्यों उसकी ऊंचाई घटती गई। विमान में विराजित सीताजी अयोध्या के बाह्य भाग में उमड़ रहे मानव समूह को देखकर बोल उठी, "आर्यपुत्र, अयोध्या की प्रजा को तो देखो, अपने स्वागत के लिए हाथ ऊंचेकर नाच रही है और सबसे आगे हाथी पर भरत और शत्रुघ्न दिखाई दे रहे हैं।"

सीताजी के नयन हर्षाश्रुओं से भीग गये थे। हाथी ठहर गया था, और भरत शत्रुघ्न नीचे उतर रहे थे। श्री राम ने आज्ञा दी, "विमान को हाथी के पास नीचे उतारो।"

विमान चालाक ने आज्ञा शिरोधाम करके विमान को नीचे उतारा। हजारों सैनिकों ने अपार भीड़ के प्रवाह (घसारा) को नियन्त्रित करने के लिए चारों ओर घेरा डाल दिया। विमान के नीचे उतरते ही राम और लक्ष्मण छलांग लगाकर नीचे उतर पड़े भरत और शत्रुघ्न एकदम दौड़ कर राम के चरणों में पड़ गये…

आँखों में से हर्षाश्रुओं की धारायें बहने लगी " राम ने भरत को उठा कर अपने बाहुपाश में जकड़ लिया बारबार उनके मस्तक पर चुम्बन करते हुए राम ने अपने उत्तरीय वस्त्र से भरत की आँखें पोंछी। शत्रुघ्न को""पावों में आलोटते हुए शत्रुघ्न को राम ने बड़ी कठिनाई से खड़ा किया स्नेह पाश में जकड़ लिया और वात्सल्य मे उसे नहला दिया।

तत्पश्चात् भरत शत्रुघ्न ने लक्ष्मण के चरणों में नमन किया। लक्ष्मण ने दोनो अनुजों को अपनी भुजाओ में बांधकर आलिंगन किया ......

कोई कुछ भी नही बोल सका। मौन की भाषा में मिलन हुआ। चारों ओर उमड़ रहा मानव-समूह राजकुमारों का मिलन देख कर हर्ष विभोर हो उठा। सीताजी ने साड़ी के पल्ले से हर्षाश्रु पोंछे।

राम तीनों भाइयों के साथ पुष्पक विमान में आरुढ हुए। विमान चालक को त्वरापूर्वक अयोध्या में प्रवेश के लिए आज्ञा दी। आकाश मार्ग में और भूमिमार्ग में वाद्यघोष गूंज उठा। पुष्पक ने अयोध्या में प्रवेश किया। राम, लक्ष्मण और सीता ने वर्षों के बाद अयोध्या को देखा " इस नगरी ने नया शृंगार सजा था, नये रूप-रग मे इस नगरी ने राम का स्वागत किया। लका के शिल्पियों और कलाकारों ने अयोध्या को नया रूप प्रदान कर दिया था।

विशाल राजमार्गों में तथा ऊँचे महालयों की अट्टालिकाओं में खड़ी हजारों कुलवधुएँ हर्षोन्मत्त होकर श्री राम को पुष्प एवं अक्षत से वधा रही थीं, निर्निमेष दृष्टि से, उत्कण्ठापूर्ण हृदय से तथा प्रशंसा प्रपूरित वाणी से राम का स्वागत कर रही थी। राम लक्ष्मण और सीता प्रसन्नवदन होकर प्रजाजनों का स्वागत स्वीकार करते जाते थे।

परन्तु उनका मन तो मातृ-दर्शन के लिए आतुर हो रहा था ! और उनकी माताएँ पुत्र दर्शन हेतु अतीव आतुर हो रही थी।

आतुरता के बाद का मिलन कितना रोमांचक होता है ! कितना आल्हादिक होता है। कितना तृप्तिकारक होता है। राज-महालय के विशाल प्रांगण में पुष्पक उतरा । श्री राम तीनों भाइयों और सीताजी को साथ लेकर अपराजिता के महल की ओर चले।

अपराजिता के महल में प्रवेश करते ही राम और लक्ष्मण माता के चरणों में गिर पड़े। अपराजिता ने दोनों पुत्रों के माथे पर हाथ रखकर खूब-खूब आशीर्वाद दिये। राम ने अपराजिता...... जननी ...... के सामने देखा... माता का मुख अकाल में ही वृद्ध बन गया था। उनके शरीर पर न तो अलंकार थे और न बहुमूल्य वस्त्र। एक महान राजमाता में वैभव नहीं था और न था रूप सौन्दर्य। आँखों में उदासीनता छा रही थी, और वाणी में आर्द्रता भरी हुई थी। राम ने बारंबार माता के चरणों में मस्तक रखकर माता के चरणों को आसुओं से भिगो दिये। तत्पश्चात् सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा के चरणों में प्रणाम करके उनके आशीर्वाद प्राप्त किये। चारों भाई अपराजिता के सामने बैठ गये।

उसके बाद सीता, विशल्या आदि पुत्रवधुओं ने अपराजिता, सुमित्रा आदि सासुओं के चरणों में नमन किया। अपराजिता ने तो सीता और विशल्या को अपने बाहुपाश में जकड़ कर खूब गाढ़ आलिंगन किया। पुनः पुनः आशीर्वाद दिये। विशल्या आदि लक्ष्मण जी की पत्नियों के लिए तो अयोध्या और अयोध्या का राज परिवार नया-नया ही था। अयोध्या के वैभव, राज-परिवार की भव्य अस्मिता और नगरजनों के उष्मापूर्ण स्वागत ने इनके हृदय को आनन्द और गौरव से भर दिया था और उससे बढ़कर सासुओं के वात्सल्य .... अपार स्नेह ने तो उनके समग्र व्यक्तित्व को प्रभावित कर दिया था।

यद्यपि लक्ष्मण सुमित्रा के पुत्र थे, तथापि अपराजित (कौशल्या) को उन पर अपार वात्सल्य था। यदि राम अपराजिता की दाहिनी आँख थे, तो लक्ष्मण बांई आँख थे। पुत्र वधुएँ सुमित्रा कैकेयी और सुप्रभा के सान्निध्य में जाकर बैठ गई, तब अपराजिता की कोंख (कुक्षि) में लक्ष्मण छुप गये, (गोदी में लेट गये), माता का हाथ अपने हाथ में लेकर, और उनकी आंखों से अपनी आंखें मिलाकर लक्ष्मण माता के सामने देखते रहे।

मां!

"वत्स‥‥" लक्ष्मण ने अपना मुँह माता की गोद (देउत्संग) में छुपा दिया और रो पड़े (रोने लगे)। अपराजिता की आंखो से आँसुओं की धारा वह निकली। अपराजिता के दोनों हाथ लक्ष्मण के माथे पर फिर रहे थे ‥वेदनापूर्ण वदन से और आँसू झरती आंखों से लक्ष्मण ने अपराजिता के सामने देखा और बोले—

"मां, तेरी (तुम्हारी) यह स्थिति? अकाल में ही वृद्ध हो गई है तूं"

'बेटा अब तुझे देखकर पुनः मुझे जवानी आ जायेगी तुझे देखकर ही मेरा मन प्रफुल्लित हो गया है ‥मानो, तू आज ही जन्मा हो‥‥और जो स्नेह मेरे मन में उत्पन्न हो‥‥वैसा स्नेह मेरे हृदय में उभर रहा है।" अपराजिता ने लक्ष्मण को आलिंगनों से अभिषिक्त कर दिया (भिगो दिया)।

"माता तू हमारे विरह में कितनी ज्यादा व्यथित हुई और अपने शरीर को तूने सुखा दिया! जबकि हम तो, मानों, तूझे भूल ही गये थे ‥" लक्ष्मणजी ठुसक-ठुसक कर रो पड़े।

"पुत्र, वनवास के कष्ट ‥ वन-वन में भटकना कहाँ खाना ‥ कहाँ पीना ‥कहाँ सोना। राम और सीता इन कष्टों को तेरी परिचर्या (सेवा) से ही सहन कर सके ‥ तब मैं तो इन महलों में ही बैठी

रही हूँ तब मुझे, वत्स, यहां क्या दुःख थे ? अपराजिता ने साड़ी के पल्ले से लक्ष्मण का मुँह पोंछा।

"माँ, सच कहूँ ? मुझे तो जंगलों में भी पिताजी के और तेरे विरह से कोई कष्ट नहीं हुआ। आर्यपुत्र ने पुत्र के समान ही मेरा लालन किया और देवी सीता ··· वह तो मानो तू ही थी ! मुझे देवी सीता में तेरे दर्शन होते थे ···।

लक्ष्मण के ये शब्द सुनते ही सीता सुमित्रा की गोद में छुप गई। सुमित्रा ने सीता को स्नेह-पूर्वक छाती से लगा ली ··· और पुनः पुनः आलिंगन किया।

"माता, हमारी थोड़ी सी असावधानी ने देवी सीता को कैसे संकट में डाल दी ! परन्तु तेरे आशीर्वाद से शत्रुओं का सागर पार करके आर्यपुत्र सपरिवार यहाँ पहुंच गये (आ गये)।"

दूसरी ओर सीता सुमित्रा के कान में कह रही थी !" आर्यपुत्र को और वत्स लक्ष्मण को मेरे निमित्त से मरणान्त कष्ट उठाने पड़े मैं साथ नहीं गई होती तो ···" सुमित्रा ने उसके मुख पर हाथ रख दिया और बोली—

'ऐसा मत बोल, बेटी ! वत्स राम और लक्ष्मण तो विश्व में अपराजय हैं ! तेरे लिये अपने प्राण भी अर्पण कर दें। यह तो उनका कर्त्तव्य हैं ·।"

महामन्त्री ने आकर श्री राम को निवेदन किया—

'महा राजकुमार, राजमहल के मैदान में प्रजा आपकी प्रतीक्षा करती हुई खड़ी है, आप महल की अट्टालिका में पधार कर प्रजा को दर्शन देवें।"

राम माता को नमन करके बाहर आये, उनके बाद भरत भी खड़े हुए, और राम के साथ ही बाहर आये। मैदान में खड़ी हुई प्रजा की अपार भीड़ ने राम का जयजयकार किया, किसी ने दोनों

हाथ ऊँचे करके, तो किसी ने मस्तक नमा कर राम का अभिवादन किया। राम ने प्रजा को प्रणाम किया, और प्रजा वहां से विदा हो गई।

वहां से राम भरत के साथ वापस मातृ-मदन में आये। अपराजिता लक्ष्मण, सीता, कौशल्या के साथ अत्यन्त ही प्रसन्नचित्त में बातें कर रही थीं। राम और भरत को देखकर सुमित्रा ने कहा—

"आज चारों भाइयों को साथ-साथ बैठकर चारों माताओं को भी एक साथ भोजन करना है।" सुमित्रा का प्रस्ताव सबों ने स्वीकार कर लिया। राम के मुख पर किंचित ग्लानि आ गई वह शत्रुघ्न ने भांप ली! और उन्होंने पूछ ही लिया, "आर्यपुत्र, आपको कुछ ग्लानि उत्पन्न करने वाला विचार आ गया है क्या?"

"हां, शत्रुघ्न, आज यहां पिताजी नहीं पिताजी की स्मृति ने मुझे " राम का हृदय गद्गद हो गया, आंखें गीली हो गईं उसके साथ ही अपराजिता आदि सबों के मुख पर उदासीनता छा गई। राम के वनगमन के पश्चात् तुरन्त ही दशरथ ने संसार का त्याग कर दिया था, चरित्र अंगीकार कर लिया था।

हृदय को वश में करके अपराजिता बोलीं, "चलो, अब अपने नित्यक्रम (कर्म) से निवृत्त होकर भोजन कर लेवें।"



२ : भरत वैराग्य

अयोध्या के मन्दिरों में महोत्सव का प्रारंभ हुआ। विहार और उद्यान प्रजाजनों के आमोद-प्रमोद से मानों हँस उठे (प्रफुल्लित हो उठे)। अयोध्या के विशाल साम्राज्य के अनेक ग्राम नगरों के अधिकारी महाजन (प्रतिष्ठित लोग) राम के दर्शन हेतु जाने लगे। नगर की अनेक स्त्रियां सीता के दर्शनों के लिए आने लगीं।

सवों के मन आनन्द विभोर हो रहे थे, परन्तु एक व्यक्ति की स्थिति बिलकुल भिन्न थी …इसका मन बिलकुल ही निर्लिप्त था … इसका चिन्तन…मनन किसी नवीन सृष्टि में ही हो रहा था। वह, मानों, यह सब विरक्त भाव से देख रहा था। कर्त्तव्य कर्म सभी करता था, परन्तु कर्तृत्व अभिमान उसे नहीं था ……

यह था भरत !!

अयोध्या के महाराजा ! श्री राम के लघु भ्राता !! राम के आगमन को दो दिवस व्यतीत हो गये थे। दूसरे दिन की संध्या ढल गई थी। भरत अपने महल की अट्टालिका में खड़े थे, उनकी आँखें बन्द थीं, अनन्त प्रकाश की ओर उनकी अन्तर्दृष्टि लगी हुई थी। परम सत्य …परम तत्व की प्राप्ति हेतु इनकी आत्मा तरस रही थी। वे सुखासन पर बैठ गये… गम्भीर विचारों में तल्लीन हो गये। महल में दीपक जल उठे (ज्योतिर्मान हो उठे)। दासी ने आकर तथा नमन करके निवेदन किया —

"महाराजा की जय हो, महामन्त्री आपके दर्शन करना चाहते हैं।"

'महामन्त्री भले ही आजायें,' भरत ने दासी के सामने देखे बिना ही शब्दोचार किया (भरतजी दासी""बिना ही बोले)।

अयोध्या के वयोवृद्ध महामन्त्री ने महल की अट्टालिका में प्रवेश किया, दासी ने महामन्त्री के बैठने के लिए आसन बिछाया। महामंत्री भरत को नमस्कार करके बैठ गये। दो-चार क्षण विश्राम लेकर बोले :

"महाराजा, समग्र अयोध्या महोत्सव का आनन्द ले रही है। आनन्द की कोई सीमा नहीं है।"

भरत ने महामंत्री की ओर देखा। उनकी तेजस्वी आँखों में भरपूर हर्ष झलक रहा था। "सच बात है, महामन्त्रीजी, आर्य पुत्र के आगमन से प्रजा के हर्ष की सीमा नहीं है" (प्रजा को निःसीम हर्ष हो रहा है)।

"राजमाताओं के महलों में बहुत वर्षों बाद""इन दो दिनों से चहल-पहल है! राजमाताओं के प्रफुल्लित वदन (मुख) देखकर मेरे मन को कितनी शांति मिली है इन माताओं की वेदना मुझसे नहीं देखी जा सकती थी "

"माताओं को नया जीवन मिला है, महामन्त्री "और मेरा तो बिल्कुल ही भार उतर गया है" एक बात कहूँ, महामन्त्री?"

"अवश्य कहो, महाराज!"

"बस, अब आज से आप मुझे महाराज के नाम से सम्बोधित न करें""अपने सबके महाराजा आर्यपुत्र हैं, मैं तो उनका चरण सेवक हूं।"

"महामन्त्री मौन रहे क्षण भर के लिए भरत के शब्दों ने उनके हृदय को आर्द्र कर दिया। उनका हृदय भरत की निर्लेप

वृत्ति और सात्विक प्रवृत्ति पर न्यौछावर हो गया। धन्य है अयोध्या राजकुमार! धन्य है राजकुमार को!!"

"विचार में पड़ गये, महामन्त्री, विचारने को कुछ है ही नहीं। पितृ-तुल्य आर्यपुत्र अयोध्या में है ·अब मैं राजा नहीं प्रभात से आपको राज्य सम्बन्धी समस्त व्यवहार आर्यपुत्र के साथ ही करना है ......"

"सच बात है आपकी, परन्तु अभी श्रीराम कितने व्यस्त हैं? दर्शनार्थियों की कितनी भीड़ रहती है? बड़ी कठिनाई से भोजन के लिए भी समय मिलता है ·· वहां मैं ··· "

"भले ही, अभी मै राज्य का कार्य सम्भालता रहूँगा, परन्तु राजा के रूप में नहीं, आर्यपुत्र के अनुचर के रूप में। मुझे आर्यपुत्र आज्ञा करेंगे, वैसा मैं करूंगा ··· ·· परन्तु"

भरत के मुख पर ग्लानि आ गई। शब्द गद्‌गदित हो गये, महामन्त्री चौंक पड़े।

"महाराज यह विषाद क्यों?"

भरत की आंखें बन्द हो गई थी, मुख पर वेदना झलकने लगी थी। वृद्ध महामन्त्री ने खड़े होकर भरत के हाथों को अपने में ले लिये। भरत के हाथ गरम थे। वात्सल्यपूर्ण वृद्ध हाथ भरत के सुकोमल हाथों को पंपोल रहे थे 'आपका विषाद मुझ से नहीं देखा जाता, मेरे नाथ ··· ·· ' महामन्त्री की आंखें सजल हो गई। स्वर कम्पायमान हो गया।

भरत ने आंखें खोली···आकाश की तरफ देखा···देखते ही रहे ····महामन्त्री खड़े ही रहे। 'आप बैठो,' भरत बोले।

महामन्त्री पुनः आसन पर बैठे। भरत ने उनके सामने देखा।

"अब मैं इस संसार के बन्धनों में ···· सुख के बन्धनों में नहीं रह सकता ···· मुझे पिताजी का शब्द सुनाई देता है। महामंत्री, मैं

पिता के पास दौड़ जाऊंगा, उनके पावन पथ पर चला जाऊंगा।"

महामन्त्री की आंखों में आंसू टपक रहे थे। वृद्ध चेहरे पर विषाद गहरा था। भरत पर एक राजा के रूप में नहीं, परन्तु महाराजा दशरथ के गुणवान् और लाड़ले पुत्र के रूप में महामन्त्री को अपार स्नेह था। भरत की विरक्त दशा से वे परिचित थे। भरत राज सिंहासन पर विराजित योगी थे, महल में निवास करने वाले त्यागी थे...... यह बात महामन्त्री भली प्रकार जानते थे ......परन्तु राम के वनगमन के पश्चात् भरत ने कभी भी संसार त्याग की नहीं कही थी। आज अचानक भरत ने यह बात कह दी। महामन्त्री के दिल को धक्का लगा (ठेस लगी)।

"मेरे प्रिय राजन्, मेरी एक विनती स्वीकारोगे? कृपा करके अभी यह बात श्री राम को आप न कहना ...... आप जानते हैं श्रीराम के हृदय को......और किसी को भी यह बात न कहना ...... प्रजा का आनन्द-उत्सव टूट पड़ेगा (भंग हो जायगा) और हा हा कार मच जायगा।"

भरत मौन रहे। इन्हें तत्काल कहां किसी को बात करनी थी? परन्तु जहां हृदय मिले हुए होते हैं, वहां हृदय छुपा हुआ नहीं रह सकता। महामन्त्री के प्रति भरत को श्रद्धा और विश्वास ही नहीं बल्कि चिन्तन प्रेम था। इनके सामने भरत अपने मनोभाव गुप्त नहीं रख सके।

"अच्छा आपकी बात स्वीकार है; परन्तु यह बात निश्चित है कि जब भी मैं आर्यपुत्र को यह बात कहूँगा, तब उन्हें दुःख तो होने का ही है (होगा ही) ...... राग है न! राग ही दुःखी होता है जीव को राग के बन्धन ही आत्मा को संसार में भटकाते हैं ...... मुझे अब संसार में किसी पदार्थ के प्रति, किसी व्यक्ति के प्रति कोई राग नहीं है क्यों अब मुझे संसार में रहना ?. आर्यपुत्र की आज्ञा के

खातिर ही मैं इतने वर्षों तक रहा अन्यथा पिताजी के साथ ही मैं संसार त्याग कर अणगार बनकर परब्रह्म आनन्द नहीं लूटता।"

भरत की हृदय-व्यथा महामन्त्री नीची दृष्टि रख कर सुन रहे थे।

दो दिवस में अभी तक भरत, राम अथवा लक्ष्मण के साथ शान्ति से बैठे ही नहीं थे। बैठने का समय ही कहां था? लोगों का प्रचण्ड प्रवाह था। राम इसी में व्यस्त थे, जबकि लक्ष्मण अपराजिता सुमित्रा आदि मातृवर्ग को वनवास के संस्मरण और लंका के युद्ध का वर्णन सुनाने में ही व्यस्त थे।

राम और लक्ष्मण को कल्पना ही नहीं थी कि भरत का मन संसार का त्याग की दिशा में तीव्रता अनुभव कर रहा था! केवल एक ही व्यक्ति को भरत के मनोभाव की जानकारी थी, और वह थी माता कैकेयी! पुत्र के विचारों से वह सुपरिचित थी, परन्तु वह मौन थी। इसकी अन्तरात्मा भी आध्यात्म की ओर झुकी हुई थी।

रात्री का प्रथम प्रहर पूर्ण हुआ भरत बोले:—

"महामन्त्री जी, आप पधारो! समय हो गया है।"

"आप भी अब विश्राम करो, विगत कई दिनों से आप व्यस्त हो ··"

"विश्राम ··· !! अनेक भवों (जन्मों) से ·· अनन्त भवों से विश्राम कहां है? चार गति में आत्मा के परिभ्रमण का विचार करता हूँ, तब काँप उठता हूँ ···· थकावट का अनुभव होने लगता है, और विश्राम हेतु मोक्ष में जाने के लिए तरस उठता हूँ। मोक्ष के सिवाय विश्राम है ही नहीं ·· "

भरत रुक गये, महामन्त्री जी गम्भीर विचार में पड़ गये थे। उसी समय दौड़ती हुई परिचारिका आई और बोली:—

"महाराजा आर्यपुत्र स्वयं यहां पधार रहे हैं

भरत सहसा खड़े हो गये और आवासगृह के बाहर दौड़े। महामन्त्री भी खड़े होकर सामने गये। राम आवासगृह के द्वार पर आ गये थे। भरत ने चरणों में सिर झुका दिया। महामन्त्री ने नत-मस्तक होकर प्रणाम किया। भरत को चरणों में से खड़ा करके राम ने आवासगृह में प्रवेश किया। महामन्त्री ने प्रणाम करके जाने की अनुज्ञा ली। राम पलंग पर बैठे। भरत भूमितल पर बैठ गये।

"अभी यहां पधारने का कष्ट ……?"

"आज दिन भर तुझे देखा ही नहीं,… इसलिए चला आया।"

"संदेश भेज देते, तो सेवक हाजिर हो जाता……"

"इसमें समय ज्यादा चला जाता न।"

राम के दोनों हाथ भरत के मस्तक पर फिर रहे थे। हाथों में से अपार स्नेह बरस रहा था।

"भरत तू कुशल है न ? तेरा शरीर स्वस्थ है न ?"

"आपके दर्शन हुए आ…पके चरणों का स्पर्श मिला सारी अकुशलता टल गई, (दूर हो गई) … अस्वस्था चली गई "

"प्रजा के मुख से तो गुण सुनकर मेरा हृदय गद्गद् हो गया …… तूने प्रजा का अपार स्नेह प्राप्त किया है, भरत !"

"भगवान अरिहन्त की कृपा … निर्ग्रन्थ साधु-पुरुषों की कृपा… चारित्रवन्त पिताजी की कृपा सारा प्रभाव कृपा का है मुझ में कुछ भी योग्यता नही है "

राम मौन रहे, उनका हृदय भरत के शब्दों से गद्गद् हो गया। "हे पितृ तुल्य, पिता के वचन का पालन करने के लिए आपने जो वनवास के कष्ट सहे और रावण के साथ युद्ध किया…भामण्डल के मुख से जो बातें मैंने सुनी थी, उनसे मेरा मन अत्यन्त क्षुब्ध था, मैं यहां अयोध्या के महलों में मौज करूं और आप जंगलों में ……

भरत रुदन नही रोक सके। राम ने भरत के मुख को अपनी

गोद में ले लिया और प्रेम भरे शब्दों में बोले, "भरत तू महलों में था ही कहाँ ? तू तो हमारे साथ ही था ·· तेरी यह छाया महलों में थी ··· इसे भी मैंने ही यहाँ रखी थी !"

दोनों भाई मौन रहे, मौन की भाषा में ही बातें की !

"हे पूज्य, अब मैं बन्धन मुक्त होता हूँ · राज्य का भार ·· "

"मत बोल, भरत ! तूझे ही राजा बने रहना है।"

"यह कदापि नहीं हो सकता मैं तो आपके चरणों का सेवक ही बना रहूँगा ·· अब मुझे आप बन्धन मुक्त करो ·· · "

"तू देखता है न कि अभी मैं और लक्ष्मण कैसे लोगों से घिरे रहते हैं। तू है वही मैं हूँ और वही लक्ष्मण है ···इसलिए इस विषय में बोलना ही मत (इस विषय की बात ही मत करना)"

दूसरा प्रहर रात्रि का पूर्ण हो गया था। भरत राम को उनके महल तक पहुँचा आये। शयनगृह में जाकर पलंग पर लेट गये, परन्तु निद्रा आज वैरिणी बन गई थी !



३ : राग और वैराग्य

महोत्सव पूर्ण हो गये थे। दर्शनार्थियों का प्रवाह मन्द हो हो गया था। प्रजा अपने नित्य व्यवसाय में प्रवृत्तिशील हो गई थी। भरत का मन अब राम के समक्ष अपना निर्णय प्रकट करने के लिए तत्पर हो गया था ......और एक दिन भरत राम के समक्ष पहुँच ही गये।

राम लक्ष्मण के साथ बैठे हुए थे। वार्तालाप चल रहा था.... उसी समय भरत आ पहुँचे, "आवो, भरत, हम तेरी ही बात कर रहे थे .. तेरे राज्यकाल में प्रजा ने कितनी उन्नति कर ली है!"

"आर्य पुत्र का कथन नितान्त सत्य है। भरत, मन्त्रीवर्ग और महाजन तेरी कुशलता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं।" लक्ष्मण ने राम की बात की पुष्टि की।

परन्तु, भरत ?.... उनकी दृष्टि भूमि पर टिकी हुई थी, वे कुछ भी नहीं बोले। 'भरत, तेरा स्वास्थ्य कुशल है न ? तेरे मुख पर कुछ ग्लानि........"

'हे पूज्य, इस शरीर का स्वास्थ्य चंचल है, और हर्ष-विषाद ये तो द्वन्द हैं। इस समग्र विश्व को देखता हूं, तब ... समग्र विश्व स्वप्नवत् भासित होता है।'

राम और लक्ष्मण भरत के मुख की ओर देखते ही रहे भरत के शब्दों का मर्म ये समझ नहीं पाये भरत बोले:—

'हे आर्यपुत्र, उस दिन……जब अपन सवों को बुला कर पिताजी ने संसार त्याग की वात कही थी… तभी मैंने मेरी भी संसार त्याग की भावना व्यक्त की थी…परन्तु दुर्भाग्य मेरा… मैं पिताजी के साथ यह त्याग नहीं कर सका और आपकी आज्ञा मेरे लिए अलंध्य थी…आपकी आज्ञा से ही मैं इतने वर्षों तक .न महलों में वंधा हुआ रहा इस राज्य सिंहासन पर बैठा रहा मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया है। अब मैं इन वन्धनों से व्याकुल हो गया हूँ… मेरा मन…मेरा अन्तर्रात्मा निर्बन्धन होने के लिए तड़प रहा है… ।

राम आँखें बन्द करके शब्द सुन रहे थे। लक्ष्मण अत्यन्त गंभीरता से भरत को सुन रहे थे। भरत ने राम के चरणों में मस्तक झुका दिया और बोले—

"हे पूज्य मुझे अनुज्ञा प्रदान करो, मैं अणगार बनूं, मुनि बनूं…राजपाट का त्याग करके वन-जंगलों में रहकर आत्मध्यान करूं मुझे अनुज्ञा प्रदान करो, राज्य की जवावदारी में से मुझे मुक्त करो… आप यहां पधार ही गये हो अब मेरा मन एक क्षण भी विलम्ब करने के लिए तैयार नहीं है मुझे इस संसार पर जरा सा भी राग नहीं है… है तो केवल उद्वेग है आकुलता है अशान्ति है … मुझे मुक्त करो।'

राम की बंद आंखों में से आँसुओं की धारा वहने लगी। उनका हृदय व्यथित हो गया, उन्होंने भरत के मस्तक पर दोनों हाथ रखकर गद्गद् स्वर में कहा—

"वत्स, तू ऐसा क्यों बोलता है? हम तेरे स्नेह से तो यहां आयें हैं…तू ही राज्य कर… संसार त्याग की वात मत कर…"

लक्ष्मण का हृदय भर गया… एक शब्द भी वे बोल नहीं सकते थे। राम के शब्दों का भरत पर कुछ भी असर नहीं हुआ। वे

बोले ! "आर्यपुत्र, मैंने मेरे अन्तर की कामना आपके समक्ष व्यक्त की है आप पिताजी के स्थान पर हो, आपकी अनुज्ञा लेनी चाहियें। आप अब मेरे मार्ग में विघ्न मत बनो… मैं आपको अन्तकरण से प्रार्थना करता हूँ -…"

"भरत, तू विचार कर, तू हमको, राज्य को, प्रजा को छोड़ कर चला जाय। तेरे विरह की घोर व्यथा में किस प्रकार सहन कर सकूंगा ? यह लक्ष्मण, माताएँ और प्रजा किस प्रकार सहन कर सकेंगे ? इनके व्यथा की तू कल्पना कर मतजा मेरे प्यारे बन्धु ………मत जा " तू हमारे साथ ही रह … और पूर्ववत् मेरी आज्ञा का पालन कर।"

'मैंने वर्षो तक विचार किया है…खूब गम्भीरता से सोचा विचारा है … जन्म जन्मान्तरों का विचार किया है " भविष्य के अन्त काल का विचार किया है………अब मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए शक्तिमान नहीं हूँ · मुझे क्षमा करो। मैं परमात्मा द्वारा विहित (निर्दिष्ट) " और पिताजी द्वारा आचरित मार्ग पर अग्रसर होऊँगा।"

"तू आग्रह मत कर भरत, राज्य करने की तेरी इच्छा नहीं हो, तो भले ही राज्य हम सम्हालेंगे, परन्तु तू हमारा त्याग मत कर ……।"

भरत ने सोचा 'आर्यपुत्र अनुज्ञा नहीं देंगे उन्होंने खड़े होकर राम को नमन किया, लक्ष्मण को नमन किया और वहां से जाने लगे परन्तु तत्काल लक्ष्मण खड़े हुए और भरत को उन्होंने अपने बाहुपाश में जकड़ लिया।

'भरत, मैं तुझे नहीं जाने दूंगा …' लक्ष्मण की कठोर आँखें आंसुओं से भीग गई थी।

तीनों भाइयों का वार्तालाप द्वार पर खड़ी परिचारिकाएँ सुन रही थी। भरत के संसार त्याग के निर्णय को सुनकर परिचारिकाएँ व्यथित होकर सीताजी के पास दौड़ी गई। सीता, कौशल्या आदि रानियां आवासगृह में थी।

"देवी, महाराज भरत ने संसार त्याग का निश्चय कर लिया है ......आर्यपुत्र और लक्ष्मण जी ने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु वे तो....परिचारिकाएँ रो पड़ी। सीता, विशल्या आदि स्तब्ध हो गई।

'क्या तुम सत्य कहती हो ? भरत जी चारित्र लेने के लिए तत्पर हो गये हैं। उत्सुकता, व्यग्रता और व्यथा से सीताजी कांप उठी।"

"हाँ महादेवी, वे तो उठकर चले ही थे परन्तु लक्ष्मणजी ने पकड़ लिए हैं .. अर्यपुत्र चौधार आंसुओं से रुदन कर रहे हैं....लक्ष्मणजी की आंखें.......।' सीता विशल्या आदि रानियां जरा सा भी विलम्ब किये विना वहाँ से दौड़ पड़ी और जहां राम, लक्ष्मण और भरत थे, वहां आ पहुँची। राम और लक्ष्मण एक ओर खड़े हो गये। रानियों ने भरत को घेर लिया। भरत की इन भाभियों ने भरत के चारित्र लेने के आग्रह को भुला देने का निर्णय कर लिया।

'देवरजी, आपको चारित्र लेना हो तो भले ही ले लेना, पर हमारी एक वात तो अपको माननी पड़ेगी ..... मानोंगे न ? विशल्या ने भरत को पूछा। परन्तु भरत तो मौन ! उन्होंने तो विशल्या के सामने भी नहीं देखा।

"भले ही आप मौन रहो, परन्तु हम तो यहाँ से जाने वाली नहीं.......हमारी वात माननी होगी। एक वार हमारे साथ जल-क्रीड़ा करो, क्या हमें इतना भी आनन्द नहीं दोगे !' विशल्या ने भरत के दोनों हाथ पकड़ कर उन्हें हिलाया (झकझोरा) ! भरत के मुख पर

मुस्कराहट आ गई, भाभियों ने इस मुस्कराहट को भरत की स्वीकृति मानी और अपनी विजय !

विरक्त भरत जल क्रीड़ा करने सरोवर में उतरे। भाभियों ने उन्हें उतारा। राम और लक्ष्मण ने शान्ति की साँस ली, 'अब भरत थोड़े दिनों तक तो अवश्य संयम की बात भूल जावेंगे' परन्तु जो भरत वर्षों तक राज्य करते रहने पर भी विरक्त बने रहें वही भरत घड़ी-दो-घड़ी की जल-क्रीड़ा में रागी बन सकते हैं क्या ? विशल्या आदि ने अतीव हर्ष से भरत के साथ जल-क्रीड़ा की। भरत के वैराग्य को दूर करदेने के लिए प्रत्येक स्त्री-कला आजमाई।

जल क्रीड़ा सम्पूर्ण हुई। भरत सरोवर के तीर पर आकर खड़े हो गये। वैसे ही निर्लेप ! वैसे ही विरक्त ! भाभियों की कोई भी कला कारगर नहीं हुई।

परन्तु उसी समय राजमहल में एक बड़ा अकस्मात् हो गया। राम का मानीता और प्रिय हाथी 'भुवनालंकार', जिसे राम लंका से साथ लाये थे, आलान उखाड़ कर भारी उपद्रव करने लगा। मदोन्मत्त भुवनालंकार तोड़-फोड़ करता हुआ सरोवर तीर पर आ पहुँचा।

सरोवर के किनारे भरत खड़े थे। भुवनालंकार को भरत ने देखा, भुवनालंकार ने भरत को देखा। चारों आँखें मिली.... और हाथी चुपचाप खड़ा रह गया। एक कदम भी वह आगे नहीं बढा सका.........उसका मुँह उतर गया ...... वह शान्त और स्वस्थ बन गया।

भुवनालंकार आलान स्तम्भ तोड़ कर भागा है - यह समाचार राम, लक्ष्मण को मिलते ही सुभटों के साथ दोनों हाथी के पीछे दौड़ आये। परन्तु सरोवर के तीर पर भरत और हाथी को आमने-सामने (एक दूसरे के सामने) देखते हुए और हाथी को शान्त हुआ देखा ... वे स्तब्ध (आश्चर्य चकित) हो गये। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था

कि भरत को देखते ही हाथी क्यों शान्त हो गया ? महावत लोग हाथी को आलान स्तम्भ पर ले गये और बांध दिया।

राम, लक्ष्मण और भरत रानियों के साथ महल में वापस आये। पूरी अयोध्या में दो बातें फैल गईं।

१. भरत संसार त्याग के लिए तत्पर हो गये हैं,

२. भरत को देखते ही उन्मत्त भुवनालंकार हाथी एकदम शांत हो गया!

महल में आते ही एक शुभ समाचार उद्यान पालक ने सुनाया और भरत के आनन्द की सीमा नहीं रही।



४ : भरत का पूर्व भव

'महाराजा, उद्यान में परम ज्ञानी मुनीश्वर पधारे हैं।' उद्यान पालक ने आकर समाचार सुनाया। राम ने उद्यान पालक को प्रतिदान दिया, और समग्र परिवार के साथ राम, लक्ष्मण और भरत महामुनि को वन्दन करने हेतु उद्यान में गये।

केवलज्ञानी देश-भूषण मुनीश्वर और कुल-भूषण मुनीश्वर को देखते ही सबों को अपूर्व रोमांच हुआ। भाव पूर्वक वन्दना की और विनय पूर्वक सभी मुनिचरणों में बैठ गये।

राम ने प्रश्न किया, 'हे ज्ञानी मुनीश्वर, एक प्रश्न पूछने की अभिलाषा है। आप आज्ञा प्रदान करो, तो पूछूँ।

'पूछ सकते हो।' देशभूषण मुनि ने प्रत्युत्तर दिया।

'प्रभो मेरा हाथी भुवनालंकार मदोन्मत्त होकर विनाश कर रहा था। वह मेरे अनुज भरत को देखते ही शांत क्यों हो गया? क्या इन दोनों के पूर्वजन्म के ऐसे सम्बंध हैं?'

केवल ज्ञानी भगवन्त देशभूषण ने राम की जिज्ञासा संतुष्ट करना शुरु किया।

'भगवान ऋषभदेव ने जब संसार त्याग किया था, तब भगवान के साथ अन्य चार हजार राजाओं ने भी संसार त्याग दिया था, और भगवान के पीछे पीछे विचरते थे।

भगवान ने मौन धारण किया हुआ था। प्रजा को दान देने का ज्ञान नहीं था; क्योंकि कोई दान लेने वाला था ही नहीं। भगवान ही प्रथम भिक्षुक थे.....और वह भी अपने राजा। एक वर्ष तक भगवान को भिक्षा नहीं मिली .....परन्तु भगवान को इसका खेद नहीं हुआ। वे चार हजार राजा, जिन्होंने प्रभु के साथ संसार त्याग दिया था, व्याकुल हो गये। प्रभु को छोड़ कर वे गंगा नदी के किनारे जंगलों में पहुँच गये और वहां रहने लगे। वे वन्य फलादि का आहार करने और भगवान के नाम का रटन करते काल यापन करने लगे।

इन चार हजार राज ऋषियों में चन्द्रोदय एवं सूरोदय नामक दो राजकुमार थे। वनवासी जीवन में जीते हुए ये दोनों मृत्यु को प्राप्त हुए। जीवन के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जीवन ...... यह संसार की घटमाला चलती ही रहती है! चन्द्रोदय को मृत्यु के पश्चात् गजपुर में नव जीवन मीला। राजा हरिमति और रानी चन्द्र लेखा का पुत्र हुआ, नाम रखा गया, कुलंकार। दूसरे राजकुमार सूरोदय ने भी उसी गजपुर में जन्म लिया। विश्वभूति और अग्निकुण्डा के ब्रह्मण परिवार में वह जन्मा, और उसका नाम हुआ श्रुतिरति।

राजकुमार राजा बना और ब्रह्मणपुत्र, पुरोहित। दोनों में बहुत प्रीति थी, क्योंकि पूर्वजन्म के संस्कार प्रीति के ही थे।

एक दिन राजा कुलंकर तापसों के आश्रम में जा रहे थे। मार्ग में एक अवधिज्ञानि मुनि अभिनन्दन मिले। उन्होंने राजा को कहा।

'हे राजन्, पंचाग्नि तप तपने वाले इस तापसके आश्रय में तू जा रहा है वहां जलाने के लिए जो लकड़िया लाकर रखी हैं, उनमें एक बड़ा ठूंठ (लकड़ा) हे, उस ठूंठ में एक बड़ा सर्प है... वह तेरे

पितामह क्षेमंकर का ही जीव है! इसलिए इस ठूंठ को चिरवा कर उस बेचारे (लाचार) सर्प की रक्षा करनी चाहिये।'

पवित्र मुनिराज की वाणी सुनकर राजा विह्वल हो गया। त्वरित गति से आश्रम में पहुँचा। वहां जलाने के लिए पड़ी हुई लकड़ियां देखी · पास ही पंचाग्नि तप तपते हुए तापस को देखा ···· अभी तक उस बड़े ठूंठ को आग में नहीं डाला गया था। आश्रम के अन्य तापसों को वह बड़ा ठूंठ सावधानता पूर्वक चीरकर उसके अन्दर से सर्प को बाहर निकालने को कहा। तापस विस्मित हो गये। तुरन्त ही उस ठूंठ को चीरा गया ······और उनमें से एक बड़ा सर्प निकला।

उस प्रसंग (घटना) का राजा कुलंकर पर गम्भीर प्रभाव पड़ा · 'मेरे पितामह, सर्प! दयालु मुनि भगवन्त यह नहीं बताते, तो अनर्थ हो जाता! मुनीश्वर का यह कैसा अद्भुत ज्ञान है······· और उस तापस का कैसा अज्ञान-कष्ट है?' राजा का मन संसार के सुख भोगों से विरक्त हो गया। वह अभिनंदन मुनि के सम्पर्क में आया संसार का त्याग करके साधु जीवन स्वीकार करने हेतु तत्पर हो गया।

राजा की वैराग्य होने और श्रमण बन जाने की तत्परता की जानकारी श्रुतिरुचि को हुई। उसने राजा को कहा; 'हे राजन्, इस उम्र में चारित्र नहीं लिया जाता ··· ··और यह धर्म आम्नाय भी वैदिक नहीं है ······क्यों जल्दी करते हो? उस पर भी यदि आपको श्रमण बनना हो, तो वृद्धावस्था में बनना·······' श्रुतिरुचि की सलाह ने राजा के उत्साह को भंग कर दिया। 'अब क्या करना?' इसी विचार में राजा मौन हो गया·······

दूसरी और एक विषादपूर्ण घटना घटित हो गई। राजा की

रानी श्रीदामा का नगर के एक राजमान्य पुरोहित के साथ अनैतिक सम्बंध हो गया था ।' राजा संसार त्याग करके श्रमरण बन रहा है', इस समाचार से रानी और उसका प्रेमी प्रसन्न हो गये थे, परन्तु जब राजा रुक गया, तब श्री दामा को शंका हुई, 'राजा मेरे व्यभिचार को जान गये ?' उसने उसके प्रेमी को कहा, 'राजा अपना पाप जान गये लगते हैं' (मालूम होता है कि राजा अपना पाप जान गये हैं), वे अपने को मार डालेंगे, अतः यदि तुम कहो, तो मैं ही उसे.......रानी ने राजा को जहर दे दिया । राजा मृत्यु को प्राप्त हो गये । कुछ समय पश्चात् श्रुतिरति काल कर गया ।

दोनों मित्र चिरकाल तक संसार में भटके । राजगृह में कपिल ब्राह्मण के घर में सावित्री ब्राह्मणी की कुक्षि में ये दोनों मित्र जोड़ले भाइयों के रूप में जन्में । एक का नाम विनोद, और दूसरे का नाम, रमरण ।

कालजुग से दोनों तरुण हुए । रमरण वेदाव्ययन करने हेतु देशान्तर गया । कितने ही वर्षों बाद वह अध्ययन पूर्ण करके वापस राजगृह आया, परन्तु नगर के नजदीक आया, तब रात्रि हो गई थी । इससे वह नगर में नहीं गया और नगर बाहर एक यक्ष मंदिर में सो गया ।

रमरण का भाई विनोद । विनोद की पत्नी का नाम शाखा । दत्त नामक ब्राह्मण के साथ शाखा का अनुचित सम्बंध हो गया था । समय-समय पर ये दोनों पूर्व संकेतानुसार इस यक्ष मंदिर में आते थे । इस रात्रि को भी पूर्व संकेतानुसार शाखा इस यक्ष मंदिर में आई ... .शाखा जब घर से बाहर निकली, तब विनोद जाग गया था, और तलवार से लेकर उसके पीछे हो गया था ।

यक्ष मंदिर में आकर शाखा ने रमरण को अपना प्रेमीदत्त

समझकर जगाया, दत्त तो वहां आया ही नहीं था, अंधकार था ... रमण को कुछ भी समझ में नहीं आया ...... वह शाखा के बहुपाश में बंध गया ...... उसी समय क्रोधातुर विनोद ने रमण पर तलवार का वार कर दिया ...... रमण मर गया ... पर रमण की छुरी से शाखा ने वहीं पर विनोद की छाती चीर डाली ... ... और वहां से वह कुलटा जंगल में भाग गई ...... विनोद और रमण मरे ... अनेक योनियों में जन्मे और मरे ......

विनोद अनेक भवों के बाद फिर मनुष्य भव पाया। श्रेष्टि-पुत्र के रूप में जन्मा। उसका नाम रखा 'धन' और वह रमण ...... अनेक भावों में भटकता-भटकता श्रेष्टिपुत्र धन के घर में ही जन्मा। उसका नाम 'भूषण' रखा गया।

धन के पास भरपूर धन था। भूषण इकलोता बेटा था। बहुत ही लाड़ प्यार में बड़ा हुआ। पिता का पुत्र पर अत्यंत राग, और पुत्र का भी पिता पर बहुत ही स्नेह था। धन ने अपने पुत्र के लिए उर श्रेष्टि कन्याओं को पसंद की, और भूषण का उर कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ।

विशाल महल की अट्टालिका में पत्नियों के साथ क्रीड़ा करता हुआ भूषण वहीं निद्राधीन हो गया था। रात्रि का चोथा प्रहर चल रहा था ' उसी समय भूषण की निद्रा भंग हो गई। दूर पूर्व दिशा में महोत्सव की आनंद ध्वनि गूंज रही थी ... श्रीधर मुनि को केवल ज्ञान हुआ था। उसका महोत्सव करने हेतु देव लोक के देव नीचे पृथ्वी पर आ गये थे। भूषण ने अपनी पत्नियों को जगा दी, और महामुनि के केवल ज्ञान महोत्सव में भाग लेने चला ...... उच्च मनोरथों के साथ उद्यान की ओर जाते हुए मार्ग में ही भूषण को एक भयंकर सर्प ने डस लिया ... जवान भूषण वहीं ढह गया .... उसका प्राण पछी उड़ गया। स्त्रियां करुण विलाप करने

लगीं ···· नौकर धन श्रेष्ठि को बुला लाये···· धन श्रेष्ठि तो पुत्र को निश्चेष्ट देखकर छाती फाड़ रुदन करते हुए धरती पर गिर पड़े। मांत्रिक आये और तांत्रिक आये ·· परन्तु भूषण सजीवन नहीं हो सका।

जिसकी मृत्यु सुधर गई····· मरते हुए शुद्ध भाव रहे ···· उसकी सदगति ही होती हैं। भूषण रत्नपुर नगर में अचल नामक चक्रवर्ती की रानी हरिजो की कुक्षि में जन्मा। उसका नाम 'प्रियदर्शन' रखा गया प्रियदर्शन सबों का प्रिय होगया, परन्तु प्रियदर्शन को संसार के कोई भी वैभव प्रिय नहीं लगते थे। उसे तो धर्म ही अच्छा लगता था। जब वह यौवन वय को प्राप्त हुआ, तब उसने चारित्र लेने की अपनी भावना पिता के समक्ष व्यक्त की। चक्रवर्ती अचल को प्रिय दर्शन पर अत्यंत स्नेह था। उसने प्रिय दर्शन को चारित्र नहीं लेने दिया, और तीन हजार कन्याओं के साथ उसका लग्न कर दिया। प्रिय दर्शन ने लग्न तो किया, पर उसकी आत्मा जाग्रत थी। चौसठ हजार वर्ष पर्यन्त गृहवास में भी उसने बाह्य-अभ्यान्तर, तपश्चर्या की और समाधिमरण करके ब्रह्मदेव लोक में देव हुआ।

और वह धन श्रेष्ठि (भूषण का पिता) पुत्र की अकाल मृत्यु से अनेक वर्षों तक विलाप करता हुआ मरकर अनेक भवों में भटका ········इस प्रकार भटकते-भटकते उसने पोतनपुर नगर में ब्राह्मण पुत्र का जन्म धारण किया। उसका नाम हुआ, मृदुमति यौवन में उद्धत बन गया। उसके पिता ने उसे घर से निकाल दिया। वह दूर देश में चला गया। सर्व कलाओं में निपुण हो गया, एक नम्बर का धूर्त बन गय । कितनों ही वर्षों बाद वापस घर आया।

मृदुमति पोतनपुर का अजेय जुआरी बन गया। थोड़े ही दिनों में उसने खूब धन कमा लिया········परंतु ज्यों-ज्यों वह धन

कमाता गया, त्यों त्यों वह पोतनपुर की प्रसिद्ध वेश्या वसंत सेना के मोहपाश में बंधता गया। वर्षों तक वसन्त सेना के साथ मनोवांछित भोग भोगे ·· एक दिन उसकी सुषुप्त आत्मा जाग उठी ····· उसे आत्मा का विचार आया ···· परलोक का विचार आया सर्प जिस प्रकार कांचली का त्याग कर देता है, उसी प्रकार मृदुमति ने सुख भोगों का त्याग कर दिया ····वह श्रमण बन गया। श्रमण जीवन का पालन करते हुए समाधिमरण करके वह ब्रह्म देवलोक में देव हुआ।

ब्रह्मदेवलोक का आयुष्य पूर्ण करके वह वैताढ्य पर्वत पर हाथी हुआ। हे राम, यही हैं तुम्हारा यह भुवनालंकार!'

प्रिय दर्शन का जीव ब्रह्मदेव लोक का आयुष्य पूर्ण करके तुम्हारा भाई भरत बना!'

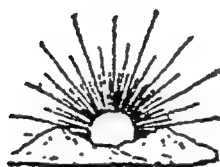
केवल ज्ञानी देशभूषण मुनीश्वर ने राम की जिज्ञासा को संतुष्ट की ····इससे परम तृप्ति तो भरत को हुई! अपने जन्म जन्मातरों का यह इतिहास सुनकर भरत का वैरागी आत्मा उछल पड़ा (हर्षोत्फुल हो गया)। देशभूषण मुनीश्वर के चरणों में पड़कर भरत ने आंसू बहाये, 'हे भगवन् अब मेरा उद्धार करो··· मुझे अब पुनः जन्म नही लेना, मुझे अब भवों में नही भटकता···· ''

राम की आंखें भीग आई। सीता, कौशल्या आदि वेर वेर बराबर आंसू डालने लगी। राम ने भरत को छाती से लगा लिया, और गद्गद् स्वर में बोले:

'वत्स भरत, अब मैं तेरे मार्ग में विघ्न नहीं करूंगा, तेरे विरागी आत्मा को राग के बंधनों में जकड़कर नहीं दुःखी करूंगा। मैं ज्ञानी भगवान को प्रार्थना करता हूं कि वे तेरे चरित्र महोत्सव पर्यन्त यहीं स्थिरता करें।'

देशभूषरण महामुनि को विनति करके राम परिवार सहित राजमहल में पधारे। राम भरत को साथ लेकर सीधे अपराजिता के महल में गये। माता के चरणों में नमस्कार करके राम ने भरत के चारित्र धारण करने का निर्णय कह सुनाया। माता अपराजिता ने भरत के सिरपर हाथ रखा और आंसू बहाती हुई बोली :

'वत्स, तुझे मैं किस प्रकार चारित्र की अनुमति दूं ? परन्तु ...... मेरे मोह के करण तेरे आत्मा की मुक्ति में अंतराय नहीं करूं तेरा कल्याण हो, बेटा...... !' (वत्स ...!') अपराजिता रोने लगी; राम भी वहाँ रुदन नहीं रोक सके। उसी समय कैकयी, सुमित्रा, सुप्रभा आदि भी वहां आ गई। भरत का चरित्र लेने का निर्णय सबों को मालूम हो गया था। और राम की सम्मत्ति की भी सबों को जानकारी हो गई थी।



५ : भरत चारित्र मार्ग पर

राम ने महामंत्री को बुलाकर भरत का चारित्र महोत्सव आयोजित करने की सूचना दे दी थी (आज्ञा प्रदान कर दी थी)। विभिषण, सुग्रीव, विराध, भामण्डल, नील, रत्नजटी और हनुमान आदि के चारित्र महोत्सव में आने हेतु निमन्त्रण प्रेषित कर दिये थे। वनवास की अवधि में स्नेही स्वजन बने अनेक राजाओं और श्रेष्ठियों को भी निमन्त्रण भिजवा दिये गये थे।

रात्रि को अन्धकार का पर्दा पड़ गया था, मानव निर्मित दीपकों का प्रकाश फैल रहा था। जिस प्रकार आज अयोध्या की प्रजा निद्राधीन नहीं हो रही थी, उसी प्रकार अयोध्या का राजपरिवार भी रात्रि का द्वितीय प्रहर तक जाग रहा था।

राजमाता कैकेयी के महल में रत्न दीपकों का प्रकाश फैल रहा था। कैकेयी पलंग पर बैठी थी। सामने ही एक सिंहासन पर अयोध्या पति भरत बैठे थे। माता-पुत्र का वार्तालाप एक प्रहर से चालू था, राम और अपराजिता की आज्ञा प्राप्त करने के बाद भरत को माता की आज्ञा प्राप्त करना अनिवार्य था। कैकेयी के मुख पर विपाद एवं आनन्द के मिश्रित भाव झलक रहे थे ""वह भरत की वातें स्वस्थता एवं गम्भीरता पूर्वक सुन रही थी। भरत के प्रति अपार वात्सलय के कारण कभी-कभी विह्वलता अनुभव करती थी (विह्वल हो जाती थी)।

'भरत, तू चारित्र लेगा, तो मैं भी चारित्र ले लूंगी ...' कैकेयी ने कोई कल्पना न कर सके ऐसी बात कह दी। कैकेयी पलंग पर बिलकुल सीधी बैठ कर गम्भीर स्वर में बोली—

'तू चारित्र लेगी ? सत्य ?' भरत सिंहासन पर से उतर कर माता के सामने आकर खड़े हो गये। इनके मुख-मंजुल पर विस्मय और आनन्द के मिश्रित भाव उभर रहे थे।

'हाँ, भरत, मैं सचमुच चारित्र लूंगी... तू ही बता, तू चारित्र ले ले, फिर मेरे जीवन में क्या बच रहता है ? तुझे मैंने उस समय, जब तेरे पूज्य पिताजी के साथ तू चारित्र लेने को तैयार हुआ था मैंने तुझे क्यों रोक लिया था ? तेरे बिना ये महल मेरे मन श्मशान ही हैं। तेरे बिना अब मुझे संसार में क्या करना है ? मैं तेरे साथ ही चारित्र लूंगी ...सर्व बन्धनों....बाह्य-अभ्यान्तर सभी बन्धनों से मुक्त होकर अव्यय-पद को प्राप्त करूंगी।'

भरत कैकेयी के निर्णय ...इस निर्णय के आधार भूत कारण और निर्णय के बाद के जीवन के संकल्प को सुन रहे थे। कैकेयी पलंग से नीचे उतर कर महल के झरोखे में जाकर खड़ी हो गई। भरत कैकेयी के पीछे-पीछे चलकर माता की बगल में खड़े हो गये ... आकाश स्वच्छ था, निर्मल था, असंख्य तारक-मण्डल टिमटिमा रहा था (असंख्य तारे टिमटिमा रहे थे) कैकेयी ने भरत की ओर देखा।

'तेरे पिताजी ...इस अनन्त आकाश के क्षितिजों को लाँघकर, सात रज्जू लोक पर (के ऊपर) सिद्ध शिला पर पहुँच गये....न अब उनको जन्म मरण के फेरे (परिभ्रमण) और न आधि, व्याधि या उपाधि। उनकी आत्मा परम ज्योति में ज्योतिर्मय बन गयी। यही परम ध्येय है ...यही आत्मा का अंतिम लक्ष्य है.......

'वत्स ... ' भरत के मस्तक पर हाथ रखकर कैकेयी बोली—

'मैं जानती हूँ कि मैंने तुझे संसार में जकड़ रखकर तेरे आत्मा को दुःख पहुँचाया है ... मैंने मेरे मोह के कारण ही तुझे रोका था ... यदि उस समय मेरे आत्मा जगरित हो गया होती, तो तेरे मार्ग में तो विघ्न डालती ही नहीं, वल्कि मैं स्वयं तेरे पिता और तेरे साथ चारित्र लेने को तत्पर हो गई होती ... परन्तु मेरा यह दुर्भाग्य ही था ... ... ।

मैं यह भी जानती हूँ कि श्री राम वनवास में गये तू राजा ... परन्तु उस समय से अभी तक तेरे मन में मेरे प्रति उदासीनता ही ही रही तेने एक आदर्श पुत्र के रूप में मेरा विनय किया है, मेरी आज्ञाएँ मानी हैं, परन्तु तेरा हृदय कभी भी खैर, अब तू प्रसन्न हो, तेरे वन्धन तोड़ तेरे निमित्त से मेरे भी वन्धन टूट जायेंगे · इतना ही नहीं, अयोध्या की प्रजा भी मेरे इस निर्णय को जानेगी, तब ...... ? मेरा कलंक धुल जायेगा। श्री राम के वनवास में सच पूछा जाय तो मैं ही निमित्त वनी थी न ? इससे प्रजा को कैसा घोर दुःख हुआ था !'

कैकेयी का मनोमंथन चल रहा था। तीसरा प्रहर हो गया था परन्तु निद्रा आज कैकेयी के आवास में प्रविष्ट ही नहीं थी। भरत कैकेयी के मथन को सुनते ही रहे। उनके मन में बड़ा हर्ष हुआ ... माता भी चारित्र अंगीकार करके आत्मश्रेय साधे। इस पुत्र को ... वैरागी पुत्र को हर्ष क्यों नहीं होगा ?

'माता, तेने चारित्र लेने का निर्णय किया। उससे मुझे आह्लाद हुआ है, आनंद हुआ है तेरा निर्णय उचित है। मुझे तेरे प्रति स्नेह है, श्रद्धा है ... तेरे इस निर्णय से कल अयोध्या में आश्चर्य साथ-साथ तुझ पर अभिनन्दनों की वर्षा होने लगेगी।'

भरत ने माता के चरणों में नमस्कार किया और अपने महल

में चले गये। कैकेयी तीसरे प्रहर के अन्त में निद्राधीन हुई।

अयोध्या के आज्ञाधीन राजा, मित्र राजा, स्नेहीजन …जिन जिन को भरत के चारित्र लेने की बात विदित हुई अयोध्या आने के लिए रवाना हो गये। राजाओं के रथ हाथी, घोड़े अयोध्या के राज मार्गों पर दौड़ने लगे। एक हजार राजा अयोध्या में आ पहुँचे। अनेक श्रेष्टी और सार्थ वाह भी आ गये। अयोध्या के सैंकड़ों जिन मंदिरों में उत्सव प्रारम्भ हो गये थे। महाराजा भरत प्रभात से संध्या तक गरीबों को, अनाथों को दान देते थे। अयोध्या के राज मार्गों का अच्छीं तरह सजा दिया गया था।

माता कैकेयी के निर्णय के दूसरे दिन भरत ने राम को जानकारी दी। राम स्तब्ध हो गये (आश्चर्य चकित हो गये)

'क्या कहते हो भरत? माता कैकेयी भी चारित्र लेगी?

'सत्य है, आर्यपुत्र, माता का दृढ़ निर्णय है।'

राम शीघ्र कैकेयी के महल में पहुँचे। कैकेयी के चरणों में नमस्कार करके सिंहाहसन पर बैठे 'माता, भरत ने मुझे कहा कि तू भी चारित्र लेने का निर्णय कर बैठी है ……? राम ने कैकेयो को सीधा प्रश्न पूछा। कैकेयी के मुख पर स्मित छा गई (मुस्कान छा गई)। उसने राम के सामने देखा और कहा, 'वत्स, भरत ने कहीं वह बात सच है। मैंने चारित्र ग्रहण करने का निर्णय किया है। रात को ही मैंने भरत को अपने हृदयगत भाव प्रकट किये।'

'इस प्रकार अचानक निर्णय करने का ……'

'वत्स. यह निर्णय मैंने अचानक नहीं किया प्रकट अवश्य अचानक किया है बाकी, मेरा मन तो यह निर्णय कर ही चुका था कि भरत संसार त्याग करें, उसके साथ ही मुझे भी संसार त्याग

करना, सचमुच मुझे अब इस संसार में सुखों की स्पृहा नहीं रही''''
कोई राग नहीं रहा '''तथा कोई कामना नहीं रही तेरे पिताजी के मार्ग में ही जाने में मेरे और भरत के आत्मा का श्रेय है (कल्याण है)"

राम कैकेयी के उपशम रस सरते वचन सुन रहे हैं '' उनकी आँखें अश्रुओं में भींग गई हैं '''कैकेयी चारित्र लेगी '' भरत चारित्र लेगा.......' राम को स्नेहियों का विरह पीड़ित कर रहा है। राम की आँखों में आँसू देखकर कैकेयी ने अपनी साड़ी के पल्ले से राम की आँखें पोंछी। राम के माथे पर वात्सल्य पूर्ण हाथ फिराती हुई कैकेयी बोली—

'वत्स, तेरी मातृभक्ति ने विश्व को एक महान् आदर्श प्रदान किया है '' सच कहूँ तो मैंने तुझे कुछ सुख नहीं दिया ''' अरे, दुःख ही दिया है'''कष्ट दिया है '' नहीं, नहीं, माता, ऐसा मत बोल। मेरी कल्पना में भी नहीं कि तूने मुझे दुःख दिया है। तू ऐसा मत बोलना।'

यही तेरी अद्भूत मातृभक्ति है तूने तेरे सुख दुःख की कभी भी चिंता नहीं की है '''''' तूने तेरे स्वार्थ को कभी भी नहीं देखा''''वत्स, तेरा कल्याण हो, तेरा मंगल हो ''

राम ने कैकेयी के चरणों में नमस्कार किया और वहाँ से अपने महल में आये। श्री राम के मुख पर गंभीरता एवं अव्यक्त वेदना थी। माता और भाई के संसार त्याग के निर्णय ने राम को विह्वल कर दिया था। सीता जी का मन भी विक्षुब्ध था। देवर भरत पर सीता को वात्सल्य था। सीता ने राम का स्वागत किया, परन्तु खिन्न वदन से। न कुछ राम बोले और न कुछ सीता बोली। मौन रह कर भोजन किया और राम माता अपराजिता के पास पहुँचे। अपराजिता को कैकेयी के निर्णय की जानकारी हो चुकी

थी। वे कैकेयी के पास जा आई थी; कैकेयी का निर्णय पक्का था, नगर में भी बात फैल गई थी।

'वत्स, मैं अभी ही कैकेयी के पास से आई हूँ, उसने संसार त्याग का निर्णय ले ही लिया है धन्य है उसके सत्व को ....'

'माता, तू यदि ऐसा कोई निर्णय लेती मेरा हृदय स्नेही जनों के विरह से व्यथित हो रहा है''' सच कहूँ? वनवास में जाते हुए मुझे भरत का या कैकेयी का विरह जितना व्यथित नहीं कर सका उससे भी आज मैं कितना व्यथित हो रहा हूँ! मुझ में स्वस्थता नहीं है...... '

'जो मार्ग माता-पुत्र ले रहे हैं, वह मार्ग महान है राम, अपूर्व सत्व के विना उस मार्ग पर नहीं जाया जा सकता। तेरे पिताजी ने इस चारित्र मार्ग को स्वीकार करके अपन सबके लिये इस मार्ग को आदर्श रूप स्थापित किया है। इसी मार्ग में आत्मा का कल्याण है.... संसार में क्या है? संसार के सुख क्षणिक हैं ... दुःखदायी हैं ... भगवान मुनिसुव्रत स्वामी द्वारा निर्दिष्ट मोक्ष मार्ग ही परम सुख का मार्ग है। कैकेयी और भरत ने सचमुच भव्य पुरुषार्थ किया है ... "

राम अपराजिता के सामने अनिमेष दृष्टि से देख रहे थे, और उनकी ज्ञानपूर्ण सुमधुर वाणी सुन रहे थे। राम कुछ भी नहीं बोले। मौन रह कर ही उन्होंने माता की बातों को स्वीकर कर लिया। उसी समय सुमित्रा प्रविष्ट हुई और अपराजिता तथा राम की ओर देखकर बोला---

"एक नया समाचार सुनाऊँ? कौशल्या के पास बैठती हुई बोली---

"क्या? कौशल्या ने उत्सुकता पूर्वक पूछा। राम सुमित्रा की ओर देखने लगे।

'अयोध्या के मित्र राजा और आज्ञाधीन राजा भरत के पास गये थे। भरत ने उनके साथ क्या बात की, वह तो मैं जान नहीं सकी; परन्तु इन एक हजार राजाओं ने भी भरत के साथ ही चारित्र लेने का निर्णय किया है!'

'तू क्या कह रही है सुमित्रा?' किसने कहा तुझे?'

अपराजिता खड़ी हो गई। सुमित्रा का हाथ पकड़ कर अतीव आश्चर्य से बोली:—

"मुझे लक्ष्मण ने अभी कहा है!'

"तब तो सच है! कहां है लक्ष्मण?"

"वह विश्राम गृह में जाकर आंखें बन्द करके पड़ा है" और मुझे कहता है—इन सबों को क्या हो गया है? क्यों ये सब चारित्र ले रहे हैं? जिसको जिसमें सुख लगा वह सही!

'सच बात है लक्ष्मण की। जिनको इस संसार में सुख नहीं दीखे वे क्यों रहें संसार में? अपन को संसार में सुख दिखाई देता है न ""? आश्चर्य ही है कि एक हजार राजा भी भरत के साथ चारित्र ले रहे हैं!'

राम बोले—'सत्य बात है। भरत के प्रति उनके स्नेह की इन राजाओं के साथ भरत ने जो स्नेह पूर्ण सम्बन्ध रखे हैं, जिस निःस्पृहता से प्रजा का पालन किया है उसीका यह प्रभाव है। और पूर्व भवों के स्नेह सम्बन्ध भी काम करते हैं न!'

राजमाता कैकेयी, अयोध्यापति भरत और एक हजार राजाओं के संसार त्याग की घोषणा ने केवल अयोध्या में ही नहीं, बल्कि सारे भारत वर्ष में हलचल मचा दी। लाखों स्त्री पुरुष अयोध्या में

आ पहुँचे। विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, नल-नील आदि भी अयोध्या में आ गये। अयोध्या की गली-गली में और मनुष्यों के मुख-मुख से त्याग, वैराग्य और चारित्र की प्रशंसा, चारित्र लेने वालों का गुणगान और अयोध्या के राज परिवार की विशेषताओं के गीत गाये जा रहे थे, प्रभुभक्ति के महोत्सव, गरीबों को दान और सहधर्मियों की भक्ति ...... अयोध्या की प्रजा और लाखों अतिथियों के लिए भोजन गृह खुल गये थे। धर्म रंग की मानों होली ही खेली जा रही हो, ऐसा अपूर्व वातावरण अयोध्या का हो गया था।

महामुनीश्वर देशभूषणजी अयोध्या के उद्यान में विराजित थे। अयोध्यापति के चारित्र महोत्सव में वे महान् आकर्षक केन्द्र थे। भरत वारम्वार गुरु चरणों में जाकर ज्ञानतृप्ति प्राप्त करते थे।

चारित्र अंगीकार करने का दिन आ गया।

कैकयी, भरत और हजार राजाओं के रथ सजाये गये (शृंगारे गये)!

भरत राम के वाहुपाश में बंधे थे। राम की आंखें चौधार आंसू बहाती हुई भरत के मस्तक को भिगो रही थी। पास ही सीता हाथ में रत्नजड़ित थाल में कुंकम और श्रीफल लेकर खड़ी थी। आंखों में से बेर बरावर आंसू गिराती हुई और ढूसुक-ढुसुक करती हुई कौशल्या के कंधे पर अपना सिर रख दिया करती थी।

अचानक भरत को कुछ स्मरण हो आया ...... उनके मुख पर चमक आ गई, श्री राम को वोले : 'आर्यपुत्र भुवनालंकार को मिल आऊं। राम के साथ भरत हस्तिशाला में आये। भुवनालंकर ने भरत को देखते ही सूंड ऊंची की। उसे भी पूर्व भव का स्मरण हो गया था। भरत ने कहा :

'भुवनालंकार, आज मैं वैराग्य मार्ग पर अग्रसर होऊंगा.........

कम वन्धनों को तोड़कर ... परम पद प्राप्त करूंगा ... तू भी... अरे, तू चारित्र नहीं ले सकता, परन्तु तप तो कर सकता है, त्याग कर सकता है... ' भुवनालंकार ने मस्तक झुकाकर और सूंड हिलाकर भरत के कथन को स्वीकार किया। भरत ने भुवनालंकार के मस्तक पर हाथ रखा।

राम के साथ भरत महल में आये। सीताजी ने भरत को तिलक लगाया, और भरत महल के बाहर आये। लाखों प्रजाजनों ने 'महाराज भरत की जय हो! राजर्षि भरत की जय हो!' के गगन भेदी जयजयकार किये।

भरत के पीछे कैकेयी बाहर आयी। प्रजाजनों ने कैकेयी को भी बधाई की (खूब सम्मान किया) ... भव्य वरघोड़ा (जुलूस) निकला।

उद्यान में जाकर वर घोड़ा रुका।

मुनीश्वर देशभूषणजी ने कैकेयी, भरत और हजार राजाओं को चारित्र अंगीकार करवाया।

मुनीश्वर ने धर्मदेशना की और परिषद् वापस गई।

राम ने भी परिवार सहित राजर्षियों को वन्दना की और वापस नगर में आये। मुनीश्वर ने वहां से विहार कर दिया।

भरत ने चारित्र-पालन किया, कर्मों का क्षय किया और मोक्ष पधारे। कैकयी ने भी मुक्ति प्राप्त की थी। राजाओं ने भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार सद्गति और परमगति प्राप्त की। भुवनालंकार ने अन्त समय में अनशन किया और पांचवें देवलोक में देव हुआ।

---

६ : शत्रुघ्न द्वारा मथुरा विजय

राम के महल का सभा-कक्ष खचा-खच भरा हुआ है। राम के पास ही एक ओर लक्ष्मण और शत्रुघ्न बैठे हैं। दूसरी ओर विभीषण, सुग्रीव हनुमान आदि सिंहासनों पर आरूढ़ हैं। भामण्डल आदि राजा लोग भी अपने-अपने आसनों पर बैठे हुए हैं। विद्याधर राजा लोग भी, जो दीक्षा-महोत्सव में आये थे, सभाकक्ष की शोभा बढ़ा रहे थे। अयोध्या का मन्त्रि वर्ग, श्रेष्ठिवर्ग (महाजन) आदि भी उपस्थित थे। सबों ने राम की प्रार्थना की कि भरत के दीक्षा लेने के कारण अयोध्या के रिक्त सिंहासन पर वे आरूढ़ होवें। राम बोले :

यह लक्ष्मण वासुदेव है। राजसिंहासन पर इसका अभिषेक करो। सभी ने राम के आदेश को स्वीकार किया और शीघ्रता-शीघ्र भव्य राज्याभिषेक की तैयारियां प्रारम्भ कर दी। साथ ही साथ राम का बलदेव के रूप में अभिषेक करने का निर्णय किया गया। शुभ दिवस और शुभ मुहूर्त में ......लक्ष्मणजी का भरत क्षेत्र के वासुदेव' के रूप में हजारों राजाओं और लाखों प्रजाजनों ने राज्याभिषेक किया और राम का 'बलदेव' के रूप में।

भरतक्षेत्र के ये आठवें 'बलदेव'-वासुदेव हुए।

दूसरे दिन राम-लक्ष्मण के सान्निध्य में विशाल सभा का आयोजन हुआ। राम ने हितकारी नीति की घोषणा की। प्रजा ने इस नीति को आदर्श राजनीति के रूप में स्वीकार की। साथ ही

भिन्न-भिन्न राज्यों का बंटवारा भी कर दिया गया । राक्षस दीप के अधिपति विभीषण घोषित हुए और वानर द्वीप के राजा सुग्रीव, विराध को पाताल लंका का राज्य, नील को अक्षपुर का, हनुमान को श्रीपुर का, प्रतिसूर्य को हनुपुर का, रत्न जटी को देवोपगीन नगर का और भामजुन को वैताढ्य पर्वत पर के रथनुपुर नगर का राज्य दिया गया । दूसरे राज्य भी अन्य वीर पुरुषों को प्रदान किये गये । राम ने पास ही बैठे शत्रुघ्न की ओर देखा । स्नेह और वात्सल्य पूर्ण वाणी में राम बोले--

'वत्स शत्रुघ्न' शत्रुघ्न सिंहासन से उतर कर राम को प्रणाम करके पास में आकर खड़े हो गये । राम शत्रुघ्न के मस्तक पर हाथ फिराते हुए बोले--

'शत्रुघ्न, तुझे कौनसा देश- प्रदेश अच्छा लगता है ? कह, तू मांगे वह देश प्रदेश तुझे दे दूँ ।'

शत्रुघ्न विचार में पड़ गये ··· ···राम ने पुनः पूछाः--
'क्यों ? बोल, तुझे कौनसा प्रदेश दूँ ?'
शत्रुघ्न बोले, 'मथुरा का राज्य ।'

'मथुरा ? शत्रुघ्न, मथुरा दुःसाध्या है' (दुर्जयः) । यह तू जानता है ? मथुरा के राजा मधु के पास 'शूल' नामक अस्त्र है·······पूर्व भव के उसके मित्र चमरेन्द्र ने उसे दिया है । इस अस्त्र की विशेषता है कि वह इसे शत्रु सैन्य की ओर फेंक देता है, तो वह शत्रु सेना का संहार करके ही वापस आता है ।' राम ने लक्ष्मण की ओर देखा । लक्ष्मण गंभीरता से विचार कर रहे थे ।

मधु राज्याभिषेक महोत्व में भी आया नहीं था । अयोध्या आज्ञा (आज्ञा) स्वीकारने को भी तैयार नहीं था । राम की इच्छा

मधु को छेड़ने की नहीं थी; परन्तु शत्रुघ्न ने मथुरा के राज्य की ही इच्छा व्यक्त की, तब राम गंभीर विचार में पड़गये। शत्रुघ्न बोले:—'हे आर्यपुत्र, मैं किसका भाई हूँ ? जिन्होंने राक्षस द्वीप पर विजय प्राप्त किया है और लंकापति जैसे को रण में पराजित किया, ऐसे राम-लक्ष्मण का मैं भाई हूँ..... ...युद्ध में शत्रु की कौन रक्षा करने वाला है (कर सकता है) ? आप कृपा करके मुझे मथुरा का राज्य प्रदान करो। मैं मधु का प्रतिकार करूँगा।'

शत्रुघ्न का अत्यन्त आग्रह देखकर राम ने उसे मधु के साथ युद्ध करने की सम्मति प्रदान कर दी; साथ ही उसे युद्ध नीति भी समझा दी, अपराजेय धनुष-बाण दिये और युद्ध विषयक सेनापति वृत्तान्तवदन को साथ में दिया।

शत्रुघ्न ने लक्ष्मण के चरणों में प्रणाम करके आशीर्वाद मांगे। लक्ष्मण ने उन्हें 'शिलीमुख' अग्निमुख और अर्णावावर्त' नामक धनुष बाण दिये और आशीर्वाद देते हुए (देकर) कहा 'वत्स, तू विजयी होना.......''

राज सभा का विसर्जन होने के पश्चात् शत्रुघ्न माताओं के पास गये। माताओं ने उन्हें आशीर्वाद दिये। शत्रुघ्न मथुरा विजय के लिए उतावले हो गये। इनके जीवन का यह प्रथम महायुद्ध था। मधु जैसे शक्तिशाली राजा के विरुद्ध युद्ध करना था।

युद्ध की पूर्व तैयारियाँ पूर्ण हो गई, सेनापति वृतान्तवदन ने शत्रुघ्न के साथ बैठ कर युद्ध की समग्र व्यूह-रचना बनाई। युद्ध प्रयाण का मंगल दिवस भी निश्चित हो गया। यह सब इतना शीघ्र एवं गुप्त हुआ कि मथुरा को इसकी गन्ध भी नहीं आ सकी।

शुभ मुहूर्त में शत्रुघ्न ने अयोध्या से प्रयाण किया। निरन्तर प्रयाण करते हुए वे मथुरा के पास बहने वाली नदी के किनारे पहुँच

गये। नदी किनारे ही सेना का पड़ाव डाल दिया। इनके गुप्तचर तो कभी से मथुरा पहुँच गये थे और गुप्त जानकारी प्राप्त करने में लगे हुए थे। (संलग्न थे)।

रात्री का समय था। गुप्तचरों ने आकर शत्रघ्न को समाचार दिये:—

'महाराजा, मथुरा की पूर्व दिशा में कुवेर उद्यान है। मधु उसकी रानी जयन्ती के साथ आज उद्यान में गया है। अभी हम कुवेर उद्यान में से ही आ रहे हैं। मधु जयन्ती के साथ क्रीड़ारत हैं।'

'उसका वह 'शूल' उसके साथ में हैं क्या ?'

'जी नहीं, शूल अस्त्रागार में ही रख कर मधु क्रीड़ा करने उद्यान में गया है।'

'बहुत अच्छा आज की रात ही निर्णायक बन जायगी' गुप्तचरों को विदा करके शत्रुघ्न ने तत्काल ही कृतान्त् वदन सेनापति को बुलवाया।

'सेनापति जी, अभी ही सैन्य को अत्यन्त गुप्तता से मथुरा में प्रवेश करने की आज्ञा प्रदान कर दो, और पूर्व दिशा की ओर के द्वार पर अपूर्व व्यूह रचना करो, वहीं आज प्रथम और अन्तिम युद्ध कर लेने का है।'

शत्रघ्न छल-युद्ध करना चाहता था, क्योंकि जिस समय मधु के पास शूल न हो, उसी समय वह मधु को पराजित कर सकता था, सैन्य नदी पार करके सामने के किनारे पर पहुँचने लगा। पश्चात् भूमि में वतान्त वदन को रखकर शत्रुघ्न ने स्वयं सैन्य का नेतृत्व किया और पूर्व द्वार पर पहुँच गये। नगर के द्वार पर ही युद्ध करना था द्वारपालों को जीवित ही पकड़ लिया गया। नगर की शांति में

तनिक भी विघ्न नहीं डालते हुए अयोध्या के सैनिक मधु की प्रतीक्षा करने लगे। रात्रि का प्रथम प्रहर पूर्ण होने आ गया था। गुप्तचरों के अनुसार मधु दूसरे प्रहर के अन्त में वापस आने वाला था।

थोड़ी ही देर में उद्यान के मार्ग पर कुछ घुड़सवारों के साथ एक भव्य रथ दिखाई दिया (दृष्टिगोचर हुआ)। रात्रि की नीरव शांति में रथ के पहियों में लगी हुई घुघरियों की खनखनाहट मधु के आगमन की स्पष्ट सूचना दे रही थी। मार्ग के दोनों ओर अयोध्या के सैनिक वृक्षों की ओट में छिपे हुए थे। मधु के रथ के आगे उसका पुत्र लवण था। लवण ने अभी नव-यौवन में प्रवेश ही किया था। वह साहसी वीर जवान था। शस्त्र सज्ज लवण अश्वारूढ़ था। उसके पीछे चार अश्वारोही सैनिक थे और उनके पीछे मधु का रथ चल रहा था। रथ के पीछे दो घुड़सवार चल रहे थे। मधु को ऐसे छल युद्ध की कल्पना ही नहीं थी! वह तो महारानी जयन्ती के साथ आमोद-प्रमोद करता हुआ जा रहा था। जैसे ही लवण ने नगर द्वार में प्रवेश किया, वैसे ही शत्रुघ्न ने उसे चुनौती दी। सैनिकों ने मधु के रिसाले को घेर लिया। कृतान्तवदन ने रथ के पीछे चलने वाले दोनों घुड़सवारों को यम लोक में पहुँचा दिया और शत्रुघ्न ने लवण को समाप्त किया।

मधु इस अचानक आई हुई आपत्ति से स्तब्ध हो गया .... परन्तु दूसरे ही क्षण जैसे ही लवण-वध देखा ... वह रथ के बाहर कूद पड़ा। उसने धनुष की टंकार करके शत्रुघ्न को युद्ध के लिए ललकारा।

दोनों पराक्रमी और वीर हैं, दोनों को ही परस्पर लड़ लेना है। सैन्य खड़ा ही रहा। शत्रुघ्न और मधु अपने-अपने शास्त्रास्त्रों का प्रयोग करते हैं। एक दूसरे के अस्त्र को तोड़ते हैं। दोनों में एक प्रहर तक यह तुमुल (भयंकर) युद्ध चलता रहा। कोई भी किसी को मार नहीं रहा था।

शत्रुघ्न ने अर्णवावर्त धनुष को स्मरण किया ...... देवाधिष्ठित धनुष उसके हाथ में आ गया । । अग्नि मुख और शिलीमुख तीरों को याद करते ही वे भी उपस्थित हो गये ।

शत्रुघ्न ने अर्णवावर्त धनुष का टंकार किया ...... मथुरा भी एक दम चौंक कर जाग पड़ी ... धनुष पर अग्नि मुख तीर चढ़ा कर मधु पर छोड़ा ...... मधु बींधा गया ......। उसका वज्र समदेह भूमि पर टूट पड़ा ।

रानी जयन्ती रथ में से कूद पड़ी और मधु के घायल देह को लिपट गई । चौधार आंसू बहाती हुई रुदन करने लगी । कृतानी वदन सेनापति ने सैनिकों के साथ रानी का रक्षण किया । मृत्यु के किनारे खड़ा मधु विचार करता है ।

'अस्त्रशाला में से शूल मेरे पास आया नहीं ......' शत्रुघ्न को मैं मार नहीं सका ...... मै न तो इस शत्रु पर विजय प्राप्त कर सका और न अभ्यान्तर शत्रुओं को ही जीत सका.......'

मधु का चित्त आत्म चिन्तन की ओर झुक गया । शत्रुघ्न पर की वैर-बुद्धि चली गई ......वह विचारने लगा : 'मैंने इस जीवन में जिनेन्द्र को नहीं पूजे ...... जिन चैत्यों का निर्माण नहीं किया....... जिन अनगार की भक्ति नहीं की . मेरा जन्म विफल गया.........अरिहन्त...... अरिहन्त.......'

उसका कण्ठ सूखने लगा । एक सैनिक पानी ले आया .... उसके ओठों को गीले किये । उसने जलपान करने से इन्कार कर दिया...... और आत्मसाक्षी से चारित्र स्वीकारा ....सर्व जीवों से क्षमा याचना की और नमस्कार महामन्त्र का ध्यान प्रारम्भ किया । परमेष्टि ध्यान में ही उसके आत्मा ने नश्वर-देह को छोड़

दिया। देवलोक का वासी बना। तीसरे देवलोक में वह महान् ऋद्धिमान देव बना।

रानी जयन्ती के शोक पूर्ण रुदन की सीमा ही नहीं रही.... वहाँ उसे आश्वासन देने वाला कौन था? शत्रुघ्न का हृदय द्रवित हो गया। देवो ने मधु के देह पर पुष्प वृष्टि की, और घोषणा की, मधुदेव जयवान् बनों!'

मधु के मृत देह को सम्मान पूर्वक मथुरा में ले जाया गया। मधु के योग्य सम्मान के साथ उसके मृतदेह का अग्नि-संस्कार किया गया। रानी जयन्ती को उसकी इच्छानुसार मातृगृह भिजवा दिया गया।

मधु का शूल-शस्त्र!

वह तो साक्षात् देव ही था। देव रूप मे शूल चमरेन्द्र के पास पहुँचा। चमरेन्द्र को मधु के वध के समाचार दिये। 'राम-लक्ष्मण के अनुज शत्रुघ्न ने छल-कपट से मधु का वध कर दिया। इस समाचार से चमरेन्द्र के रोष की सीमा ही नहीं रही। चमरेन्द्र स्वयं शत्रुघ्न का वध करने चले। उसी समय वेणुदारी देव ने पूछा: 'कहाँ पधार रहे हैं, देव?'

'मित्र के वध करने वाले का वध करने.......'

'अरे, धरणेन्द्र के पास से रावण को जो शक्ति मिली थी, वह भी अर्ध-चक्रवर्ती लक्ष्मण का वध नहीं कर सकी। शक्ति पराजित हुई ...... और रावण जैसा रावण (योधा) जिसके हाथ से मारा गया..... ऐसे लक्ष्मण के सामने मधु की क्या हस्ती? लक्ष्मण के आदेश से ही शत्रुघ्न ने मध का वध किया है.......'

'अरे गरुड़पति, उस शक्ति पर लक्ष्मण ने जो विजय प्राप्त

किया था, वह कन्या विशल्या का प्रभाव था। उस समय वह ब्रह्मचारिणी थी। अब वह लक्ष्मण की पत्नी बन गई है, इसका प्रभाव नष्ट हो गया ...... मैं शत्रुघ्न को नहीं छोड़ूंगा ......'

चमरेन्द्र रोष से धमधमाता हुआ मथुरा में उतरा, वहां उसने प्रजा को पूर्ण सुखी देखी शत्रुघ्न के राज्य को ... राज्य की प्रजा को उसने रोगग्रस्त कर देने का संकल्प किया..... उसने प्रजा में विविध प्रकार के रोगों का उपद्रव शुरु कर दिया। शत्रुघ्न मुंभवण (चिन्ता) में पड़ गये....... कुल देवता की उपासना की। कुल देवता ने सत्य बात प्रकट करदी ...... 'यह चमरेन्द्र का उत्पात है।'

शत्रुघ्न चिन्तातुर अवस्था में मार्ग दर्शन प्राप्त करने हेतु अयोध्या गये। राम लक्ष्मण के सामने सारा वृत्तान्त कह सुनाया.... सब विचार में पड़ गये।



७ : शत्रुघ्न का पूर्व-भव

शत्रुघ्न जिस समय अयोध्या पहुँचे, उसी समय मुनीश्वर देश-भूषण और कुल भूषण भी विचरते-विचरते अयोध्या पधार गये थे। वन पालक ने मुनीश्वरों के आगमन के समाचार दिये। राम, लक्ष्मण शत्रुघ्न तीनों भाई मुनीश्वरों को वन्दना करने उद्यान में पहुँचे। वन्दन विधि पूर्ण करके तथा सुख शान्ति पूछ कर राम बोले:—

'हे भगवन्त, यह शत्रुघ्न मथुरा के लिए इतना आग्रही क्यों बना ? मथुरा का इतना अधिक आकर्षण क्यों ?' देश भूषण मुनी ने राम के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा: –

'शत्रुघ्न के जीव का मथुरा के साथ जन्म जन्मान्तरों का सम्बन्ध है, फिर इसे मथुरा का आकर्षण क्यों न होवे ? देखो, एक जन्म में शत्रुघ्न और श्रीधर नामक रुपवान जवान था। मथुरा में इसके समान किसी का सौन्दर्य नहीं था। श्रीधर को साधुओं के अत्यधिक श्रद्धा भक्ति थी।

एक दिन श्रीधर राजमार्ग में जा रहा था। राजमहल के झरोखे में बैठी हुई रानी ललिता ने उसे देखा और वह उस पर आसक्त हो गई। रानी ने श्रीधर को इशारा किया और दासी को भेजकर गुप्त मार्ग से उसे महल में बुलवा लिया। ललिता और श्रीधर भान-भूलकर विषय-भोग में लीन हो गये। उसी समय अचानक राजा महल में आ गया। रानी घबरा गई और शयन कक्ष में

से एकदम दौड़कर बाहर आई तथा राजा के लिपट गई। अत्यधिक भयभीत हो जाने का ढोंग करती हुई वह बोली:—

'मेरे शयन कक्ष में कोई चोर घुस गया है।'

राजा ने श्रीधर को पकड़ा और कोतवाल को बुलाकर आज्ञा दी:—

'इस दुष्ट को वध स्थान पर ले जाओ और यमलोक पहुँचाओ'

कोतवाल श्रीधर को वध स्थान पर ले गया। संसार की स्त्री जाति की लीला देखकर श्रीधर को अब मृत्यु का भी भय नहीं रहा, वह मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हो गया; किन्तु उसी समय कल्याण मुनि नामक एक महामुनि वध-स्थान के पास से होकर जा रहे थे। वे श्रीधर को जानते थे। महामुनि ने श्रीधर को मुक्त कर देने की कोतवाल को प्रेरणा दी। कोतवाल ने राजा को निवेदन किया और उसने श्रीधर को मुक्त कर दिया।

श्रीधर ने चारित्र ग्रहण कर लिया। तपश्चर्या करके वह देव लोक में देव हुआ, और वहाँ से पुनः उसने मथुरा में जन्म लिया।

मथुरा के राजा चन्द्र थे। उनकी रानी थी कांचनप्रभा, उसकी कुक्षि से श्रीधर के जीव ने जन्म ग्रहण किया। उसका नाम 'अचल' रखा गया। पुत्र पर राजा को बहुत ही स्नेह था।

कांचन प्रभा के अतिरिक्त राजा की आठ रानियां और थीं और उनके अपने आठ राजकुमार थे। उनमें प्रमुख था भानुप्रभ। उनको चिन्ता हुई, 'पिताजी अवश्य राज्य अचल को ही देंगे, उस पर पिताजी का अत्यधिक स्नेह है। अतः किसी भी उपाय से इस कांटे को दूर करना चाहिये।'

इन आठों राजकुमारों ने अचल का वध करने की योजना

बनाई। राज्यमन्त्री को इसकी जानकारी हो गई और उसने अचल को सावधान कर दिया। अचल रात के समय मथुरा से भाग गया और जंगलों में दौड़ने लगा।

रात्रि का अन्धकार और नंगे पांव। एक बड़े कांटे ने अचल के पांव को बींध दिया, इससे उसे घोर वेदना हुई और वह रो पड़ा। अरुणोदय का समय था। एक जवान सिर पर लकड़ी का भार उठाये जा रहा था। उसने अचल को रोता हुआ देखा, उसके पास आया और लकड़ी का भार नीचे रखकर उसके पांव का कांटा निकाल दिया।

अचल ने पूछा : भाई, तू कौन है ?'

"मैं श्रावस्ती नगरी का निवासी हूँ। मेरा नाम अंक है। पिता ने मुझे घर से निकाल दिया है। लकड़ी बेचकर आजीविका चलाता हूँ'

'मित्र, तूने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया हैं। तू जब सुने कि अचल मथुरा का राजा बन गया है, तब मथुर अवश्य आ जाना। मैं तेरे उपकार को नहीं भूलूंगा।'

अचल अंक के साथ कौशाम्बी नगरी में आया और वहाँ परिभ्रमण करता हुआ वह सिंह नामक कलाचार्य के आश्रम में पहुँच गया। कलाचार्य के पास कौशाम्बी के राजा इन्द्रदत्त धनुष्य कला का अभ्यास कर रहे थे। अचल ने कलाचार्य को प्रणाम करके कहा :

'हे कृपावंत, यदि आप आज्ञा प्रदान करें, तो मैं भी मेरी धनु-विद्या का प्रदर्शन करूं। कलाचार्य ने उसे अनुमती दे दी और उसने अपनी कला से सिंह और इन्द्रदत्त दोनों को प्रभावित कर दिया।

इन्द्रदत्त ने अचल का परिचय प्राप्त करके उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

इन्द्रदत्त के सहयोग से अचल ने विशाल सेना तैयार की और अंग देश को जीत लिया। उसके पश्चात सेना सहित उसने मथुरा की ओर प्रयाण किया।

मथुरा के बाहर भानुप्रभ आदि आठों राजकुमारों के साथ युद्ध करके उन आठों को बन्दी बना लिया। राजा चन्द्रभद्र ने मंत्रियों को अचल के पास भेज कर सन्धि के लिए निवेदन करवाया। अचल ने मंत्रियों को अपना परिचय दिया। मन्त्री प्रसन्न हो गये और वापस जाकर राजा को निवेदन किया।

'महाराजा, यह कोई शत्रुराजा नहीं हैं, ये तो अपने प्राणों से भी प्यारे राजकुमार अचल हैं!'

राजा चन्द्रभद्र अत्यन्त हर्षित हुए। अचल का भव्य स्वागत के साथ नगर प्रवेश करवाया और मथुरा राज्य सिंहासन पर उसका अभिषेक कर दिया। साथ ही भानुप्रभ आदि कुमारों को देश निकाले का दण्ड दिया, परन्तु अचल ने उनको बचा लिया और अपने गुप्त सहयोगी के रूप में उन्हें नियुक्त कर दिया।

एक दिन अचल ने श्रावस्ती के उस 'अंक' को देखा। सैनिक उसे पीट रहे थे। अचल ने अंक को छुड़ाया और अपने पास बुलाकर अपना परिचय कराया, तथा पूछा :

'बोल, अब तुझे क्या चाहिये ?'

'मुझे मेरे गाव जाने दो।' अंक ने कहा।

तुझे मैं श्रावस्ती का राज्य प्रदान करता हूँ। मन्त्री को बुल-

वाया और आवश्यक निर्देश देकर अंक के साथ श्रावस्ती जाने की आज्ञा दी। श्रावस्ती में अंक का राज्याभिषेक किया गया। अचल और अंक दोनों में गाढ़ मैत्री हो गई।

एक दिन महान् आचार्य, समुद्राचार्य मुनि परिवार सहित मथुरा पधारे। उनकी धर्मदेशना सुनकर अचल को वैराग्य हो गया। श्रावस्ती से अंक को बुला कर दोनों मित्रों ने समुद्राचार्य के पास दीक्षा ले ली।

चारित्र का पालन कर दोनों मित्र ब्रह्म देवलोक में देवरूप उत्पन्न हुए, वहां से आयुष्य पूर्ण करके अचल का जीव शत्रुघ्न हुआ और अंक का जीव कृतान्तवदन सेनापति हुआ। हे राघव, शत्रुघ्न को मथुरा का आकर्षण इस प्रकार से है।

समुद्राचार्य ने शत्रुघ्न के पूर्व जन्मों का पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को सन्तोष प्राप्त हुआ। शत्रुघ्न ने मुनीश्वर को वंदना करके पूछा :

'प्रभो, मथुरा में चमरेन्द्र ने जो रोग फैलाया है, उसकी शांति कैसे होगी और कब होगी ?'

हे दशरथ नन्दन, सप्तर्षि के प्रभाव से इस रोग का शमन होगा, और अल्प समय में ही तुझे शुभ समाचार मिलेंगे। तत्पश्चात् तू मथुरा जा सकेगा।'

शत्रुघ्न संतुष्ट हुआ। तीनों भाई राजमहल में आये। शत्रुघ्न ने कौशल्या, सुमित्रा और सुप्रभा को मथुरा विजय का तथा चमरेन्द्र द्वारा फैलाये गये रोग का वृत्तान्त सुनाया। माताओं ने उसे मथुरा नहीं जाने के लिए कहा, और उसने अयोध्या में निवास किया।

....

प्रभापुर नगर, श्री नन्दन राजा और उसकी धारणी रानी।

रानी ने क्रमश: सात पुत्रों को जन्म दिया । इन राजकुमारों के नाम थे – सुनन्द, श्रीनन्द, श्रीतिलक, सर्वसुन्दर, जयन्त, अयद और जयमित्र । जब आठवां पुत्र जन्मा और एक मास का हुआ, तब राजा श्री नन्दन ने सातों पुत्रों के साथ चारित्र ले लिया । प्रीतिकर नामक महामुनि के चरणों में चारित्राराधना करके राजर्षि श्रीनंदन मोक्ष गये ।

सातों राजकुमार मुनियों ने तपश्चर्या के प्रभाव से 'जंघाचारण लब्धि' प्राप्त की । अब वे आकाश मार्ग से ही गमनागमन करने लगे ।

सातों मुनीश्वरों ने विहार करते हुए मथुरा के पास पर्वत की गुफा में निवास किया । कभी एक उपवास तो कभी दो, कभी आठ उपवास तो कभी एक मास का उपवास ! इस तरह सातों मुनि तपस्या करने लगे और आकाश मार्ग से दूर नगर में जाकर पारणा करें तथा वापस मथुरा की पर्वत गुफा में आजावे ।

इन मुनिवरों के तप प्रभाव में मथुरा की प्रजा रोगमुक्त हो गई । चमरेन्द्र का प्रभाव दूर हो गया, मुनिवरों का प्रभाव फैल गया । देव पर मानव ने विजय प्राप्त किया ।

एक दिन मुनिवर तपस्या का पारणा करने अयोध्या पहुँचे । यहां अर्हद्दत्त श्रेष्ठी की हवेली में भिक्षा हेतु प्रवेश किया श्रेष्ठी जी वर्षाकाल में आये हुए मुनियों को देखकर आश्चर्य में पड़ गये ।' वर्षाकाल में विहार करके आने वाले ये मुनि कैसे ? ये मुनि यहां के तो नहीं हैं ..... ' अवश्य, ये वेशधारी पाखंडी मालूम पड़ते हैं इनको पूछ देखूं ...... नहीं-नहीं, ऐसे पाखंडियों के साथ बात क्या करना ?

'इस प्रकार सेठ विचार ही करते रहे और उनकी पुत्र-वधू ने मुनियों को भिक्षा दे दी ।

सातों मुनि अयोध्या में वर्षाकाल-विराजित 'द्युति' नामक आचार्य के उपाश्रम में गये। उन्हें देखते ही द्युति आचार्य खड़े हो गये और भावपूर्वक वन्दना की, आसन प्रदान किया और मुनियों ने यहां पारणा किया। आचार्य के शिष्यों ने मुनियों को वन्दना नहीं की; 'वर्षाकाल में विहार करने वाले ये मुनि कैसे? अपने आचार्य ने इनको वन्दना क्यों की, इतना मान सम्मान क्यों किया?' सभी साधु अवज्ञापूर्वक मुनियों की ओर देखते रहे। पारणा करके मुनियों ने आचार्य द्युति को कहा:--'हम मथुरा से आ रहे हैं और वापस मथुरा जा रहे हैं।'

सातों मुनि आकाश मार्ग से मथुरा चले गये।

आचार्य द्युति ने अपने शिष्यों से कहा:—ये तो जंघाचारण महामुनि थे। आकाश मार्ग से गमनागमन करने वाले, लब्धियों के धारक और महान तपस्वी मुनिवर हैं ' साधुओं के पश्चाताप की सीमा ही नहीं रही। वे बोल उठे:—

'गुरुदेव, हम अज्ञानियों ने तो उनको वन्दना ही नहीं की और उनकी अवज्ञा करके पाप कर्म बांधे·······'

साधु पश्चाताप करने लगे। उसी समय अर्हद्दत्त सेठ भी वहां आ गये। उन्होंने द्युति आचार्य को कहा:

'गुरुदेव, चातुर्मास में भी साधुवेश धारी पाखंडी विचरण करने लगे हैं।'

'अरे अर्हद्दत्त, इस प्रकार बोलकर महा मुनिश्वरों की निंदा मत कर। ये कोई पाखंडी मुनि नहीं थे। परन्तु जंघाचारण महामुनि थे। मथुरा से आकाश मार्ग द्वारा यहां पारणा करने आये थे और वापस मथुरा पधार गये हैं।'

'क्या कहते हैं भगवन् ? वे जंघाचारण मुनिवर थे ! मेरा तो भाग्य फूट गया। मैंने तो उनका तिरस्कार किया। उनके लिए खोटी कल्पनाएं की। मेरा क्या होगा ? सेठ को घोर पश्चाताप हुआ। उसने पूछा :

'भगवन्, मेरे द्वारा की गई अशातना के निवारण का उपाय बताइये।

'मथुरा जाकर इन मुनिवरों से क्षमायाचना कर लेनी चाहिये।'

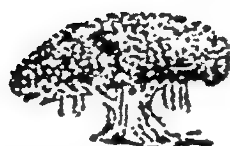
अर्हद्दत्त सेठ कातिक सुदी ७ के दिन मथुरा गये। वहां के भव्य जैन मंदिर में पूजन करके सेठ सप्तर्षि के पास गये।

'हे मुनि भगवन्त, मैं अभागा अयोध्या से आ रहा हूँ। आप पारणा हेतु मेरे घर पधारे थे, तब मैंने आपका तिरस्कार किया था ......आपके लिए मन में बहुत सी खोटी कल्पनाएँ की थी। उसके बाद अयोध्या में विराजित आचार्य द्युति से मुझे आपका वास्तविक परिचय प्राप्त हुआ। मैंने घोर पाप बांधा है, प्रभु ...... मुझे क्षमा प्रदान करके पाप मुक्त करो।'

सप्तर्षि ने सेठ को आश्वासन दिया, और सेठ अयोध्या चले गये।

सप्तर्षि के पुण्य प्रभाव से मथुरा रोगमुक्त हो गई है—यह समाचार मिलते ही शत्रुघ्न मथुरा आ गये, और सीधे सप्तर्षि को वन्दना करने गये। उन्होंने अपने यहां भिक्षा हेतु प्रार्थना की, परन्तु 'राजपिण्ड हमें नहीं खपता,' ऐसा कहकर मुनियों ने इन्कार कर दिया। तब शत्रुघ्न ने कहा : 'आप मेरे परम उपकारी हैं। आपके प्रभाव से मेरा देश निरुपद्रव हो गया है... आप यहां लोक हित के लिए विराजित रहो।'

परन्तु मुनि नहीं रुके, बोले, "घर घर जिन-प्रतिमा की स्थापना कर, जिससे इस नगर में कोई व्याधि नहीं होवे।' इतना कहकर मुनिवर आकाश मार्ग से चले गये। शत्रुघ्न ने मथुरा के पहाण की चारों दिशाओं में सप्तर्षियों की रत्नमय प्रतिमाओं की स्थापना की।



८ : बलदेव-वासुदेव

वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणि

रत्नपुर नगर और उसका रत्न रथ राजा।

राजा की चन्द्रमुखी रानी ने पुत्री को जन्म दिया। उसका नाम मनोरमा।

मनोरमा का सौन्दर्य अद्भुत था। जब वह यौवनावस्था को प्राप्त हुई, तब राजा को चिन्ता हुई। 'मनोरमा के लिए योग्य कुमार कौन ? किसके साथ मनोरमा का विवाह करना ?'

राजा रत्नरथ मंत्री के साथ मन्त्रणा कर रहे थे, उसी समय नारदजी आ पहुँचे।

राजा की आकुलता (चिन्ता) का समाधान करते हुए नारद जी ने कहा :

'मनोरमा के लिए सुयोग्य वर तो वासुदेव लक्ष्मण हैं।

यह बात मनोरमा के कान पर पड़ी। वह पिता के पास दौड़ आई। रोष से तमतमा उठी। लक्ष्मण के वंश के साथ मनोरमा के (राजा रत्नरथ) के वंश का परम्परागत वैर था। उसने नौकरों को संकेत किया, यह कोई बनावटी ढोंगी दुष्ट है ...... इसे ठोको।'

नारदजी संकेत समझ गये। नौकर मारने को खड़े होवें, उसके पहले ही नारद महल से निकल पड़े और आकाश मार्ग से उड़ चले! नारद को मनोरमा पर क्रोध आया। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया, 'मनोरमा का विवाह लक्ष्मण के साथ ही कराऊंगा!' आकाशमार्ग से ही उन्होंने अयोध्या की दिशा पकड़ी और सीधे वहां पहुँच गये।

अयोध्या के उद्यान में पहुँचकर नारद ने मनोरमा का हू बहू चित्र बनाया, और लक्ष्मण के पास पहुँच गये। उन्हें चित्र बताकर बोले:

"इस कन्या का कैसा अभिमान और कैसा साहस! आपका नाम सुनते ही इसे भृकुटी चढ़ गई और मुझे पीटने के लिए नौकरों को संकेत किया! इस कन्या का मानमर्दन (गर्व खंडन) तो अवश्य ही करना है।' लक्ष्मण मनोरमा का चित्र एकाग्रता से देखते रहे, उसके मन में उसके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। मनोरमा का पाणिग्रहण करने का निर्णय करके उन्होंने नारद से कहा:

देवर्षि मनोरमा लक्ष्मण के अन्तःपुर को सुशोभित करेगी.... आप निश्चिन्त रहिये।' नारदजी प्रसन्न हो गये और विदा ली। लक्ष्मण सीधे राम के पास पहुँचे। नारदजी का वृत्तान्त कह सुनाया और अपना निर्णय भी प्रदर्शित कर दिया। श्री राम ने अपनी सम्मति व्यक्त की।

लक्ष्मण ने सेना तैयार करने का आदेश सेनापति को दे दिया। प्रशस्त मुहूर्त में श्रीराम के साथ लक्ष्मण ने आकाश यानों द्वारा वैताढ्य पर्वत की ओर प्रयाण किया। रत्नपुर नगर अयोध्या की सेना द्वारा घेर लिया गया। लक्ष्मण ने रत्नरथ को अपना संदेश कहला भेजा:

"वासुदेव लक्ष्मण आपकी कन्या मनोरमा का पाणिग्रहण करना चाहते हैं।' यदि आपको स्वीकार हो, तो युद्ध नहीं होगा, अन्यथा युद्ध अनिवार्य है।'

राजा रत्नरथ ने लक्ष्मण के संदेश की अवगणना की और युद्ध करने को तैयार हो गये परन्तु यह युद्ध एक दिवस या एक प्रहर भी नहीं चल सका ......। लक्ष्मण ने देखते-देखते ही राजा रत्नरथ को पराजित कर वन्दी वना लिया।

लक्ष्मणजी ने नगर में विजय प्रवेश किया। राजा रत्नरथ को बन्धन मुक्त करके सम्मानपूर्वक कहा : "राजन्, आप मनोरमा को मेरे समक्ष बुलाइये। यदि उसकी इच्छा होगी, तो ही मैं उसके साथ पाणिग्रहण करूंगा।'

राजा रत्नरथ ने लक्ष्मण को पहली वार ही देखा था। उनका अनुपम रूप और अपूर्व युद्ध कौशल देखकर मन ही मन निर्णय कर लिया था कि मनोरमा लक्ष्मणजी के ही योग्य है। मनोरमा को बुलाई गई। लज्जा एवं संकोच के साथ उसने श्रीराम को प्रणाम किया और लक्ष्मण को देखते ही उसे रोमांच हो आया। रत्नरथ ने कहा : 'बेटी, ये लक्ष्मणजी हैं। मैं चाहता हूँ कि ये तेरा पाणिग्रहण करें।'

मनोरमा ने अत्यन्त संकोच के साथ कहा : "जैसी पिताजी की आज्ञा। मैं इन्हें देखते ही मन से वरण कर चुकी हूँ।'

राजमहल में आनन्द छा गया। रत्नरथ ने श्रीराम को प्रार्थना की : हे महापुरुष, आप मुझ पर कृपा करके मेरी द्वितीय पुत्री श्रीदामा का पाणिग्रहण करके मुझे कृतार्थ करो।' राम ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

रत्नपुर नगर लग्नोत्सव से हर्षोल्लसित हो गया। थोड़े ही

समय पूर्व युद्ध की विभीषिका से पीड़ित नगर हर्षोल्लास से मानों नाच उठा। नगर के हजारों स्त्री-पुरुष राम-लक्ष्मण के दर्शनार्थ उमड़ पड़े। नगर की ललनाएँ श्रीदामा और मनोरमा को लाख-लाख अभिनन्दन देने लगीं : 'धन्य हो तुम ... ऐसे वर तुम्हें मिल गये।'

खूब धूमधाम से लग्नोत्सव सम्पन्न हुआ।

'यहाँ वैताढ्य पर आये हैं, तो पूरे वैताढ्य पर विजय प्राप्त करते जावें,' यह विचार करके राम-लक्ष्मण ने वैताढ्य के दक्षिण में युद्ध यात्रा की, और विजय माला पहन कर श्रीदामा-मनोरमा के साथ अयोध्या वापस आये।

लक्ष्मण 'वासुदेव' थे।

वासुदेव को अपना पुण्य भोगना ही पड़ता है और पाप बांधना ही पड़ता है।

यह प्रकृति का नियम है, शाश्वत और सरल ! किसी का बनाया हुआ यह नियम नहीं है।

पुण्य के उदय से मिलने वाले सुख दो प्रकार के होते हैं,
(१) सुख भोगो और पुण्य बांधो,
(२) सुख भोगो और पाप बांधो !

वासुदेव को प्रबल पुण्य के उदय से सुख मिलता है, वासुदेव वह भोगता हैं और पाप बाँधता है ! दुनिया को तो उसका सुख ही दृष्टिगत होता है, सुख के उपयोग से बंधने वाला पाप दुनिया को नहीं दीखता, वह तो मात्र केवल ज्ञानी ही देखते हैं।

लक्ष्मणजी की सोलह हजार रानियाँ थी, उनमें आठ यह रानियां थी। विशल्या का स्थान प्रथम था। उसके सिवाय रूपवती

वनमाला, कल्याण, मालिका, रत्नमालिका, जितपद्मा, अभयवती और मनोरमा थी । इन आठों को एक-एक पुत्र की प्राप्ति हुई। विशल्या का श्रीधर, रूपवती का पृथ्वीतिलक वनमाला का अर्तुन, जिनपद्मा का श्रीकेशी, कल्याणमालिका का मंगल, मनोरमा का सुपार्श्वकीर्ति, रत्नमाला का विमल और अभयवती का सत्य कीर्ति।

इनके अतिरिक्त अन्य रानियों के भी पुत्र थे । सब मिलकर लक्ष्मणजी के २५० पुत्र थे।

श्रीराम !

श्राराम थे 'वलदेव' !

ये भी महान् पुण्य के स्वामी थे इनको भी पुण्य के उदय से सुख भोगने ही पड़ते हैं ·····इनके सुख भिन्न प्रकार के ! इनकी सुख भोगने की रीति भी भिन्न ! ये सुख भोगते हैं, परन्तु ऐसा पाप नहीं वांधते की जो भवचक्र में भटकावे । परन्तु जिस पाप के उदय (फल) भोगने नहीं पड़ते !

*श्रीराम के चार रानियां थीं।

(१) सीताजी, (२) प्रभावती (३) रतिनिभा और (४) श्रीदामा।

---

*रामस्यासन् महादेव्य श्चातस्तत्र, मैथिली ।
प्रभावती रतिनिभा श्रीदामा तु चतुर्थिका ।।२५३।।

—त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित्र, पर्व ७, सर्ग ८ ।

सुख को नष्ट करके अपना सुख साधना ! दूसरे को दुःखी करक अपने आपको सुखी बनाना !

दूसरी रानियों ने राम के प्रेम सुख कम मिलता हुआ मालूम पड़ता था ...... 'सीता को हमारी अपेक्षा ज्यादा सुख ......पति का ज्यादा प्रेम क्यों मिले ?'–यह ईर्ष्या उन्हें सताती थी। सीता के सुख को छीन करके ही इन्हें अपना सुख सम्पादित करना था। ये रानियां सीता के साथ हंसकर बोलती थी, पर उनका हृदय नहीं हंसता था। वे मुख पर सीता की प्रशंसा करती थी, परन्तु उनका हृदय ईर्ष्या से जलता था।

सरल स्वभाव सीता ! राम के अपार स्नेह सागर में मग्न ! सीता को अपनी सोतों के मन के दुःख कैसे दृष्टिगत हो सकते हैं !! इन रानियों को भी वे अपने समान ही सुखी मानतीं थी, इतना ही नहीं, परन्तु अपनी बहन से ज्यादा स्नेह उनसे करती थी। उन्हें इन 'बहनों' की कपट लीला की कल्पना भी आयें, ऐसी बात थी ही नहीं। 'अब मेरे भाग्य में दुःख नहीं है,' ऐसी कल्पना करके ही मानों वे जीवन-यापन कर रही थी। यही उनकी मनःस्थिति थी।

राम सीता को लेकर उद्यान में गये थे।

रानी प्रभावती के महल में रतिनिभा और श्रीदामा पहुँच गई।

आज श्रीदामा एक बड़ी प्रभावोत्पादक योजना लेकर आई। प्रभावती ने रतिनिभा और श्रीदामा का स्वागत किया। श्री दामा बोली :

'समय बीत नहीं रहा था और समाचार मिले कि प्राणनाथ तो उनकी ...... प्राणप्रिया के साथ, उद्यान में पधारे हैं ......इससे,

मन में आया कि तुम्हारे महल में हो आऊं ......मार्ग में रतिनिभा भी मिल गई।'

'तुम्हारा स्वागत है ......मुझे प्रसन्नता हुई। तुम्हारे सन्निध्य में समय भी अच्छी तरह व्यतीत हो जाता है। प्रभावती ने औचित्य प्रकट किया। श्रीदामा प्रभावती की दृष्टि में छाई हुई उदासीनता को देख रही थी। और रतिनिभा वातायन में से नगर तरफ देखती थी। कुछ क्षण मौन ही में बीत गये। इतने में परिचारिका खाद्य एवं पेय पदार्थ लेकर खण्ड में प्रविष्ट हुई। तीनों ने खान-पान प्रारम्भ किया। परिचारिका चली गई।

'सचमुच भाग्यशाली तो मैथिली ही है, हो !' श्रीदामा ने बात शुरू की।

'स्वामीनाथ मैथिली के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते।' रतिनिभा श्रीदामा के सामने देखकर मुस्कराई। इस मुस्कान में कड़वाहट भरा कटाक्ष था। श्रीदामा तुरन्त बोली :

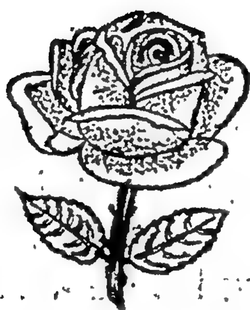
'अब इस परिस्थिति को बदलना ही पड़ेगा। क्या देवी सीता ही रानी है ? अपन नहीं ? अपने को यही विचारने का है कि पतिदेव का स्नेह सीता पर से किस प्रकार कम हो जाय !'

श्रीदामा ने प्रभावती के सामने देखा। प्रभावती की आंखें जमीन पर गड़ी हुई थी। उसके मुख पर गम्भीरता एवं खिन्नता थी। श्रीदामा की बात वह सुन रही थी, परन्तु इन बातों में मानों कोई रुचि ही नहीं हो, ऐसा लग रहा था।

रतिनिभा ने बात को लम्बाते हुए कहा :

'श्रीदामा, तुझे कोई उपाय नजर आता है कि जिससे मैथिली पर पतिदेव का स्नेह कम हो जावे।'

श्रीराम को सीताजी प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। अन्य रानियों को भी राम स्नेह करते थे; परन्तु इतना होने पर भी सीताजी को प्राप्त होने वाले प्रेम ने अन्य रानियों में ईर्ष्या भाव जाग्रत कर दिया था। संसार की यह भी एक खासियत है!



९ : ईर्ष्या की अग्नि

सीताजी ने ऋतु-स्नान किया था।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में उन्होंने एक स्वप्न देखा।

'दो अष्टापद, विमान में से उतरे और उनके मुख में प्रविष्ट हो गये।' सीता ने राम को स्वप्न की बात कही। राम ने कहा, 'तू दो वीर पुत्रों की माता होगी..... परन्तु अष्टापद का विमान में से च्युत होना मेरे मन को आनन्दित नहीं करता है।

सीताजी बोली, "धर्म के प्रभाव से और आपके प्रभाव से हे नाथ, सब कुछ अच्छा शुभ ही होगा।' सीताजी ने गर्भ धारण किया था। अत्यन्त सावधानता पूर्वक गर्भ का पालन करती थी। यों ही सीता राम को प्राण से भी अधिक प्यारी थी, गर्भवती होने पर वे और भी अधिक प्रिय हो गईं।

सीता को राम का प्रेम तो अटूट मिला, पर अन्य रानियों का प्रेम सूख गया। उनको यह भासित होने लगा कि हमारे राम को अकेली सीता ने ही जकड़ लिया है.... सीता के पीछे ही राम पागल बन गये हैं।

तीनों रानियाँ जब-जब एकत्र होतीं तब अलग-अलग योजनाओं पर विचार करतीं—राम को सीता से अलग कर देने की! तभी तो राम उनको मिल सकते थे! यही है संसार!! दूसरे के

'हाँ, मुझे एक उपाय सूझ आया है!'

'क्या? रतिनिभा की उत्कण्ठा बढ़ गई। प्रभावती ने भी श्रीदामा के सम्मुख देखा। उसकी आंखों में श्रीदामा की योजना जानने की उत्सुकता प्रती हो रही थी। श्रीदामा ने खड़ी होकर खण्ड के द्वार बन्द किये, और बहुत ही धीमे स्वर से उसने अपनी योजना प्रभावति और रतिनिभा को समझाई। रतिनिभा तो प्रसन्न गई; प्रभावती मौन रही। परन्तु श्रीदामा ने प्रभावती की पूर्ण सम्मति मिले तो ही योजना को अमल में लाने का कहा। प्रभावती ने अपनी सहमति व्यक्त कर दी, और श्रीदामा वहाँ से अपने महलमें जाने के लिए रवाना हो गई।

सीताजी का महल.......

मध्यान्ह का समय। सीताजी पलंग पर बैठी थी। पश्चिम और दक्षिण ओर के वातायनों (खिड़कियों) में से सुगन्धित पवन के झोंके आ रहे थे। अयोध्या की स्वरकिन्नरी नगर वधू (वेश्या) सीता के मन को गीत संगीत में तल्लीन कर रही थी। उसी समय खण्ड में प्रभावती रतिनिभा और श्रीदामा प्रविष्ट हुई। सीता ने तीनों को आवकार दिया, और परिचारिका ने पलंग के पास ही तीन सुखासन लगा दिये। तीनों रानियां सुखासनों पर बैठ गई। श्रीदामा ने नगर वधू की ओर देखकर इशारे से उसका कार्यक्रम चालू रखने को कहा; परन्तु सीता ने कहा :

'अल, अब कल आना।' अपनी सौत रानियों के सामने देखकर सीता बोली : 'दो घण्टे से सुन रही हूँ। अब अपन बातें करें ....इसे जाने दो।' नगर वधू ने प्रणाम करके विदा ली—प्रभावती ने सीताजी को पूछा :

"आप कुशल हैं न ?

'धर्म के प्रभाव से और स्वामीनाथ की कृपा से कुशल तो हैं।' सीताजी ने प्रत्युतर दिया।

'महादेवी आपके भाग्य की सीमा ही नहीं है'······· रतिनिभा वोली :

. 'भाग्य नियत भी नहीं है न ! कभी सद्भाग्य और कभी दुर्भाग्य !'

'सच बात है महादेवी की। देखो न, जंगल में से रावण उठा ही ले गया था न ' श्रीदामा ने रतिनिभा के सामने देखा और सीता के भूतकालीन जीवन की दुर्घटना के लिए सहानुभूति बताने का प्रयास किया।

'पर महादेवी, एक बात कहूँ ? यदि आपको बुरा न लगे तो ······'

रतिनिभा बोली :

'बोलो न। विनोद में बुरा लगने की बात ही क्या है ?' सीताजी सीधी बैठती हुई बोली।'

'अच्छा, वनवास यह दुर्भाग्य ·······रावण उठा ले गया–यह भी दुर्भाग्य ······ पर इस वनवास में जो भी जानने देखने मिला ···.... जो भव्य लंका देखने मिली·······दशमुख रावण देखने मिला········ यह तो सद्भाग्य ही है न ?'हँसती हुई रतिनिभा बोली।

'बहन, मेरे मन यह सब तुच्छ था । मुझे इसमें ··· यह सब जानने देखने की तमन्ना (आकांक्षा) ही नहीं थी । मेरे मन तो आर्यपुत्र का सन्निध्य ही सबसे बड़ा भाग्योदय था !'

'परन्तु आपने रावण को देखा तो होगा ही।' श्रीदामा बड़े प्र मपूर्ण भाव से बोली।

'नहीं जी, मुझे इस पापी का मुख देखना भी अच्छा लग

सकता है क्या ? हां, वह रोज देवरमण उद्यान में आकर दूर खड़ा रहता ···· इससे इसके पाँव के पजे जरूर नजर आते थे।'

'ऐसा ! इसके पांव के पंजें कैसे थे। महादेवी ?' श्रीदामा और प्रभावती ने पूछा।

'इसमें क्या देखने का ?' सीताजी ने उदासीनता बताई।

'नहीं, महादेवी, हमें खूब उत्कण्ठा है ···· हमें चित्र खींच कर बताओ ······' श्रीदामा ने आग्रह किया।

'पर मैं किस प्रकार चित्रित करू ?'

'आपको तो सुन्दर चित्रालेखन आता है ··· चित्र खींच कर बताओ।' रतिनिभा ने सीता का हाथ पकड़कर आग्रह किया।

सरल सीता को कपट की कल्पना ही कैसे हो सकती है ? रानियों के आग्रह को मानकर सीताजी ने भूतकालीन स्मृति पट खोलकर रावण के पंजों का चित्र बना दिया !

'वहुत सुन्दर ····· वहुत सुन्दर !' श्रीदामा और रतिनिभा आनन्द से नाच उठी। प्रभावती ने भी अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। रावण के पँजों से चित्रित वस्त्र को श्रीदामा ने अपने पास रख लिया ! सौतों की प्रसन्नता से सीताजी भी प्रसन्न हुई ····सौत रानियों को संतुष्ट करने से आनन्द का अनुभव उन्हे हुआ।

सौतों को अपनी योजना के सफल होने का आनन्द हुआ ! सीता को ठग लेने का आनन्द हुआ !

एक को आनन्द दूसरों को संतुष्ट करने का हो रहा है, तो दूसरों को सफलतापूर्वक ठगाई कर लेने का !

परिचारिका ने आकर कहा, 'माताजी अपराजिता, महादेवी को याद कर रही हैं। 'जा कह दे, मैं आ ही रही हूं।' सौतों की ओर देखकर सीता वाली :

'फिर पधारना यहां !'

'अवश्य, महादेवी के सान्निध्य में बड़ी प्रसन्नता का अनुभव होता है !' श्रीदामा ……मुख से बोली और तेजी से बाहर निकल गई। उसके पीछे रतिनिभा और प्रभावती भी चली गई। सीताजी अपराजिता के महल पर जाने के लिए रवाना हुई।

तीनों सौतें प्रभावती के महल में एकत्र हुई।

श्रीदामा प्रभावती के गले से लिपट गई……उसके आनन्द की कोई सीमा ही नहीं थी !

'अपनी योजना सफल !!'

'महादेवी कितनी सरल !' प्रभावती बोली।

'यह तो अपना जाल (पाश) ही ऐसा फेंका गया कि फँस ही जाय !' रतिनिभा बोली।

'अब अपन तीनों को मिलकर स्वामीनाथ के समक्ष यह बात रखनी चाहिये …… इस प्रकार से कि मैथिली पर उनका स्नेह उतर ही जाय। श्रीदामा ने कहा।

'सच बात है' प्रभावती बोली। कुछ और विचारणा करके तीनों रानियां अलग हुई।

……………

'हमारी क्या बात मानोगे ?

'एक ही क्यों ? अनेक।'

'हम झूठ नहीं कहती, बिलकुल सत्य……'

'नहीं, पर आपको हम पर प्रेम ही कहां है …… …?'

'प्रेम है, फिर भी' नहीं' कहती हो, तो मैं कैसे समझाऊं ?'

श्रीराम प्रभावती के महल में पधारे थे, वहां रतिनिभा और श्रीदामा भी पहुंच गई थी। श्रीराम के साथ प्रभावती का उपर्युक्त वर्तालाप हुआ, वहीं श्रीदामा ने बातचीत में प्रवेश किया :

'हे स्वामीनाथ, भले ही आपको हम इतनी प्रिय नहीं हों, पर, हमें तो आप अन्तःकरण से प्रिय हो, इससे आपका अहित हमसे ··' श्रीदामा की आंखें भर आई। वह आगे बोल ही नहीं सकी।

'आपका अहित होता हो, तब तो हमें कहना ही चाहिये न?' रतिनिभा ने वाक्य पूरा किया।

'तुम कह सकती हो, मैं सुनूंगा।'

'तो देखो यह···· ' श्रीदामा ने दशमुख रावण के पंजों का चित्र बताया श्रीराम चित्र देखते रहे ······ उन्होंने पूछा, ये किसके पंजे हैं? और इसमें क्या रहस्य छिपा है?'

'ये दशमुख रावण के पंजे हैं और मैथिली ने चित्रित किये हैं,' श्रीदामा बोली।

"मैथिली! आपकी प्राणप्रिया निशिदिन रावण का स्मरण करती हैं ··· उसी को नाथ मानती हैं ··· ऐसी स्त्री आपका ··" रतिनिभा उपालम्भ के स्वर में बोली।

राम ने रतिनिभा के सामने देखकर श्रीदामा के सामने देखा और उठकर महल की खिड़की के पास खड़े हो गये। विचार में पड़ गये।

'बस, अब आपको कुछ भी कहने का नहीं······' हमने जो बातें कहीं, वे तो हवा में उड़ गई न?

'तुम्हारी बात मैंने सुनली है। मैं विचारूंगा।'

श्रीराम प्रभावती के महल से निकल कर सीधे सीता के महल में गये।

तीनों रानियां एक दूसरी के सामने देखती रही।'

'देखो न? मैंने कहा ही था न कि स्थामीनाथ सुनलेंगे! परिणाम कुछ भी होने का नहीं!' श्रीदामा के मुख पर रोष तैरने लगा।

'परन्तु मैं नहीं छोड़ूँ; यदि अपने कहने से वे कान पर नहीं धरते, तो दूसरा उपाय करूंगी।' श्रीदामा अपने महल जाने को तैयार हुई। रतिनिभा भी रवाना हो गई। प्रभावती का हृदय कांप उठा।

'किस लिए यह सब करना। सुख तो भाग्यानुसार मिलता है। कौन इस श्रीदामा को समझाये?' स्वगत बोलती हुई प्रभावती पलंग में लौटने लगी।

'प्रिये, तेरी कुशल है न?'
'धर्म के प्रभाव से और आपके प्रताप से……'
श्री राम मैथिली के महल में आकर स्वस्थ बने।

प्रभावती के महल में उनका मन बहुत अस्वस्थ हो गया था। उनके उदार एवं उदात्त हृदय को गन्दी और मलिन बातें जरा भी अच्छी नहीं लगती थी। वे रानियों के मानस को जानते थे। उनकी कही हुई बात का जरा भी असर राम पर नही हुआ था। हां, सीता परइनका स्नेह द्विगुणित हो गया था। उन्होंने सीता जी को कहा:—

'प्रिये, वसन्त की आनन्ददायक (अल्हादायक) ऋतु आ गई है। चलो, अपन महेन्द्र उद्यान में चलें।'

'नाथ, मुझे देवाधिदेव के पूजन का मनोरथ हुआ है। उद्यान के विविध सुगन्धित पुष्पों से मैं पूजन करना चाहती हूँ……मेरे इस मनोरथ को पूर्ण करो।'

श्रीराम ने उसी समय सेवकों को आज्ञा दी। दूसरे दिन सवेरे विविध प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से भरे रत्न जटित थाल लेकर सीता ने देवाधिदेव का भावपूर्वक पूजन किया। पूजन विधि समाप्त होने पर राम सीता और परिवार के साथ महेन्द्र उद्यान जाने के

लिए निकले। अयोध्या की प्रजा वसन्तोत्सव मना रही थी, इस उत्सव में केवल इन्द्रियों के विषयों की ही क्रीड़ा नहीं थी, इसका केन्द्र था वीतराग परमात्मा की भक्ति।

राम ने अयोध्या को भक्ति में लीन देखी।

दूसरी ओर सीताजी बोल उठी:-'नाथ मेरी दाहिनी आंख फड़क रही है ... ...

'यह शुभ नहीं है .....' राम सीता की ओर देख कर बोले।

'तो अभी तक दुष्ट भाग्य मेरे राक्षस द्वीप निवास से संतुष्ट नहीं हुआ है। आपके वियोग से उत्पन्न दुःख से भी अधिक दारुण दुःख...... मुझे यह देगा क्या? नहीं तो दक्षिण नयन क्यों फड़के।'

सीता का मुख चिन्ता से ग्लान हो गया। उनकी भयभीत आंखें श्री राम की ओर लग गई।

'देवी, दुःख न करो, सुख और दुःख कर्माधीन हैं। ये अवश्य भोगने ही पड़ते हैं......यदि अशुभ कर्म उदय में आयेंगे, तो कौन रोक सकेगा?'

'मेरे मन में अस्वस्थता हो रही है।'

'तो तुम महल में जाओ। परमात्मा का पूजन करो, सुपात्र दान दो। आपत्ति में केवल धर्म ही शरण प्रदान करता है, धर्म ही रक्षा करता है।'

सीता दासी के साथ बैठकर महल में आई। अपने पर संयम रखकर उन्होंने परमात्म-पूजन किया, और दान देने लगी। 'कैसा दुःख आ पड़ेगा?' उसका कोई आसार भी नजर नहीं आ रहा था।

श्री दामा और रतिनिभा इस बात की टोह लेने लगी थी कि श्रीराम सीता के प्रति पूर्ववत् स्नेह से ही व्यवहार करते हैं या कुछ परिवर्तन हुआ है। परन्तु वसन्तोत्सव में जब राम सीता के साथ

महेन्द्र उद्यान में गये तब श्री दामा की आंखों में से मानों आग की चिनगारियां निकलने लगो। उसने दोनों हाथ मले, दांत कट-कटाये और पाँव पछाड़े।

श्री दामा रतिनिभा के महल में गई। वह भी ऐसे ही अस्वस्थ थी।

'देखा तूने! वसन्तोत्सव का आनन्द लेने स्वामीनाथ सीता को लेकर गये। इनके मन में से सीता दूर हो जाय, ऐसी संभावना ही नहीं है।'

'सच बात है श्री दामा, अब कोई दूसरा ही उपाय करना पड़ेगा। अपने कथन पर स्वामीनाथ कुछ भी विश्वास नहीं करते।

'अब मैं भी देखती हूँ ··· तुझे एक काम करना पड़ेगा।'

'तू कहेगी, वैसा करूंगी।'

तुझे, मुझे और प्रभावती को अपन तीनों को अपने महल की दासियां देखें। और सुने इस प्रकार रावण के पंजों की चर्चा करनी चाहिये। दासियों के मुँह से बात नगर में फैलेगी, राजमहल में तो फैलेगी ही। नगर में यह बात जल्दी फैल जायेगी ··· और बहुत ही जोरदार होकर आर्यपुत्र के कानों पर आयेगी तब वे ध्यान देंगे।'

रतिनिभा पहले तो श्रीदामा की बात से डरी, परन्तु फिर खुश हो गई। यह योजना यदि उल्टी हो जाय और अपन पकड़े जायँ तो?' इस कल्पना से वह भयभीत हुई पर श्री दामा ने कहा:–यह लोकवार्ता हो जाने की ······ (हो जायगी ···) षड़यन्त्र जैसा कुछ भी नहीं रहेगा।' इससे प्रसन्न होकर ··· अनुसार काम चालू करने हेतु सहमत हो गई। दोनों पहुँची प्रभावती के पास। उसे भी सब बात समझाकर सहमत करली।

प्रभावती के महल की दासियों से ही प्रारम्भ कर दिया!

रानियों की बात से दासियां चौंक पड़ी 'मैथिली रावण के पंजों का चित्रण खींचे···· रावण का ध्यान धरे ।' दासी वर्ग में चर्चाएँ होने लगी । श्रीदामा और रतिनिभा की दासियों ने भी यह बात जानी ··· मानने में नहीं आवे ऐसी बात जब सीता के हाथ से बनाये चित्र को ·······रावण के पंजे के चित्र को देखे तब मानने को तैयार हो जाती·········· '

बात अयोध्या की हवा में फैल गई···········

घर-घर में चोराहों और बाजारों में मैथिली चरित्र के संबंध में शंका का वातावरण बन गया, जब कि मैथिली को इस बात की गंध भी नहीं पहुँची ।

विधि की ही विचित्रता है न ?



१० : महासती पर कलंक

कल तक जिसके गुणगान करती हुई प्रजा थकती नहीं थी, कल तक सतीत्व के प्रति से जिस सीता को साक्षात् देवी' मानकर प्रजा मानताएँ लेती थी, कल तक जिसके दर्शन मात्र से पाप धुल जाते हैं ऐसा जो प्रजा मानती थी, उसी सीता के लिए आज अयोध्या में कैसी अफवाहें फैल रही थी।

'सीता को रावण लंका उठा ले जाय, इतने दिनों तक उसे लंका में रखे सीता के शील को वह अखंडित रहने दे क्या ?'

'और कहते है कि रावण का रूप भी अनुपम था·······भली-भली स्त्रियां आकर्षित हो जायें ·····'

'उसके अन्तःपुर में हजारों रानियां थी·······'

'ये भी, प्रत्येक ने अपनी इच्छा से ही रावण का वरण किया था,····· ऐसा रावण में आकर्षण था·······'

'तो फिर सीता भी आकर्षित हो जाय, इसमें कोई आश्चर्य नही ·····'

'स्त्री चरित्र गहन होता है·······'

'परन्तु अपन इसमें सीता को अपवाद रूप मानते थे।'

'यही बात है न, बड़े लोगों की बड़ी बातें·······'

'पर यह तो खरी बात है तो। रावण मर गया, तो भी सीता उसे नहीं भूली।'

'इसी का नाम प्रीति है न! ये तो अपने श्री राम युद्ध करके सीता को ले आये नहीं तो, सीता को वहां क्या दुःख था?'

'पर यह तो अयोध्या के कुल को कलंक लगाया कहलाता है न?'

'कहलाता ही है ····· पर समझता कौन है? क्या श्री राम को इस बात की खबर भी नहीं होगी?'

'इनको खबर ही नहीं होगी, नहीं तो, राम अर्थात् मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं।'

'तो उनके ध्यान में यह बात लानी ही चाहिये।'

'कौन लाये?'

'गाँव का महाजन (पंच)'

'इसके पहले सब बात पक्की जान लेनी चाहिये। मात्र सुनी सुनाई बातों पर·······'

'बात पक्की ही है। देखने वालों ने अपनी आंखों से देखा है कि सीता ने रावण के पांव चित्रित किये हैं। (चितरे हैं) यदि रावण से प्रेम न हो, तो उसके पांव का चित्र क्यों बनाये? इससे बढ़कर और ज्यादा क्या प्रमाण चाहिये?'

'पर अपन ने सीता को ऐसी नहीं जानी थी, तो'

'अरे यह तो स्त्री का जन्म ही ऐसा है·······'

'पर ऐसी कुलटा स्त्री? राम की पत्नी होकर ऐसा किया।

'क्या करे दूसरा? वनवास में परेशानी के बदले लंका के

वैभव क्या खराब थे ? और प्रतिवासुदेव जैसा रावण मिला········ इस में पूछना ही क्या ?'

अयोध्या की प्रजा ही मानों बदल गई थी (परिवर्तित हो गई थी)। श्रीदामा, रतिनिभा और प्रभावती की कूट योजना पार पड़ रही थी। सीता के पवित्र चरित्र पर काजल से भी काला कलंक लगाने में तीन रानियां सफल हो गई थी। नगर के वातावरण को देख कर ये रानियां नाच उठती थी। सीता को कलंकित करने के पीछे इनको सुख के समुद्र उभरते हुए दीख पड़ते थे। कलंकित सीता पर से राम का मन उतर जायगा फिर राम हमारे ही जायेंगे।' इस कल्पना के नशे में वे दौड़ रही थी।

नगर में जब सीताजी के लिए मर्यादा विरुद्ध बोला जाने लगा। तब नगर के महाजन को बड़ी चिन्तापूर्ण दुविधा हो गई। राजधानी के ये महत्तर पुरुष एकत्र हुए। विजय श्रेष्ठी, सुरदेव, मधुमान, पिंगल शूलधर, कारमक और क्षेम ये आठ आगेवान विजय श्रेष्ठी की हवेली में इकठ्ठे हुए। सब के मन खिन्न थे। मुख पर उदासीनता छाई हुयी थी। सब एकत्र होने का प्रयोजन जानते थे। बात की गम्भीरता भी समझते थे। कर्त्तव्य की कठोरता का भी अनुभव उनको हो रहा था। विजय श्रेष्ठी ने मौन भंग किया 'हे नगर महत्तरो; समग्र नगर में विगत दिनों मे जो चर्चायें चल रही हैं, उनसे अपन परिचित हैं।' इस बात का निरीक्षण करना चाहिये। इसके लिए अपन को श्री रामचन्द्रजी से मिलना चाहिए। उनके समक्ष प्रजाजनों की चर्चा रखनी चाहिए। फिर उनको जैसा योग्य लगे, करें। अपना कर्त्तव्य अपने को निभाना चाहिये।

सभी विजय श्रेष्ठी की बात सुनते रहे। सभी के मस्तक झुक गये थे। तब क्षेम महत्तर ने विजय श्रेष्ठी के सामने देखा;

'बोलो,क्षेम, आपका अभिप्राय बताओ (व्यक्त करो)।'

'मैं क्या कहूँ, श्रेष्ठि वर्य ? अयोध्या का यह कैसा पापोदय हुआ है, यही मुझे समझ में नहीं आ रहा है। देवी सीता के सम्बन्ध में ऐसी मलीनता पूर्ण बातें करते हुए लोगों की जीभ क्यों नहीं कट पड़ती है ? मुझे तो यह बात जरा भी नहीं जँचती।'

'हमको भी नहीं जँचती' शेष महत्तर भी एक स्वर में बोल उठे:—

'तो जो बात अपने को सत्य से दूर प्रतीत हो, वह बात श्री रामचन्द्रजी के समक्ष निवेदित करने का प्रयोजन ही क्या है ?'

'नगर के वातावरण से उनको परिचित रखने का कर्तव्य अपने सिर है (अपने जिम्मे है) केवल इतना ही प्रयोजन !' विजय श्रेष्ठी ने प्रत्युत्तर किया।

'मात्र वातावरण की जानकारी ही देने में बाधा नहीं है, परन्तु नगर चर्चा में अपन सहमत नहीं हैं, यह बात उन्हें स्पष्ट रूप से कह देनी चाहिये।'

'सत्य है, अपन तो श्री रामचन्द्र जी को वातावरण की जानकारी देकर इस चर्चा का अन्त लाने के लिए प्रार्थना करेंगे।'

'तो फिर अभी ही अपने को चलना चाहिए।' सुरदेव बोले।

आठों महत्तर श्रीराम के पास जाने के लिए रवाना हुए। रामचन्द्रजी के समक्ष बात प्रस्तुत करने की जवाबदारी विजय श्रेष्ठी की थी। उनका मन अस्वस्थता का सा अनुभव कर रहा था (अस्वस्थ हो रहा था)। वे जानते थे कि जिनके सामने जिनके सम्बन्ध में बात करने की है, उन श्री रामचन्द्र जी का उन (सीताजी) के प्रति कितना राग है। सीताजी के विषय की बात श्री राम के समक्ष कहना अर्थात् ····! जिन सीताजी के लिए लंकापति के साथ श्री

राम ने घोर संग्राम किया। अनेकों कष्ट सहे, उन सीताजी के लिए ऐसी दुष्टता भरी बात करने का परिणाम क्या हो सकता है ? विजय असह्य वेदना का भार सिर पर उठाकर राजमहल की सीढ़ियां चढ़ने लगे। द्वारपाल को कहा:—

'महाराजा को निवेदन करो कि नगर महत्तर आपके दर्शन हेतु आये हैं।'

द्वारपाल ने श्रीराम को निवेदन किया, तथा आज्ञा प्राप्त करके नगर महत्तरों को महल जाने की अनुमति दी। श्री राम के समक्ष पहुँचे और नमन करके भूमिपर बैठ गये।

'कहिये महत्तरो, आप किस हेतु पधारे हैं।' श्री राम ने वात्सल्य पूर्ण शब्दों में पूछा। परन्तु आठों महत्तरों के मस्तक नीचे झुक गये थे और वे कांप रहे थे ... श्री रामचन्द्र जी के राजतेज से वे दबे जा रहे थे। रामचन्द्र जी ने पुनः कहा:—

'नगर महत्तरो, आपको अभय है ......आप किसलिए क्षुभित (क्षुब्ध) हो रहे हैं ? मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है कि आप मेरे एकान्त हितैषी हो ... आप निःशंक होकर बात करो।'

श्री राम ने महत्तरों को आश्वस्त किया। विजय श्रेष्ठी को अब बोलने की हिम्मत हुई (का साहस हुआ)। उन्होंने अपनी समग्र बुद्धि (शक्ति) एकत्र करके श्री राम की ओर देखा। शेष सातों महत्तर विजय श्रेष्ठी की ओर देखने लगे और श्रीराम भी उनकी ओर एक टक देखने लगे।

'स्वामिन्, जो निवेदन करने योग्य हो, वह निवेदन न करें, तो स्वामि द्रोह कहा जाता (होता है)। और करें, तो आप सुन सकें, ऐसा भी नहीं है। हे नाथ, समस्त अयोध्या में ऐसी अपकीर्ति

के सम्बन्ध में अपवाद फैला हुआ है। यद्यपि देवी मैथिली के लिए वह घटित होना संभव नहीं है, परन्तु युक्ति से वह संभव प्रतीत होता है, इसलिए वह विश्वास योग्य सा बन जाता है। रावण ने जानकी का अपहरण किसलिए किया था? जानकी के साथ रमण करने अकेली जानकी को वह लंका ले गया और दीर्घकाल तक उनको वहां रखा। हम यह कहना नहीं चाहते कि जानकी को रावण के प्रति राग हो गया था; परन्तु समझा बुझाकर अथवा बलात्कार से रावण ने इनका शीलभंग किया हो, ऐसा हो सकता है। कारण कि रावण की स्त्री लम्पटता जगत प्रसिद्ध ही थी।

हे दशरथ नन्दन, प्रजा इस प्रकार से बोल रही है। मैंने तो जैसी सुनी थी वैसी बात कही है। लोक चर्चा आपके समक्ष रखी है। जब हमने यह चर्चा सुनी, तब हम स्तब्ध हो गये और चर्चा करने वालों के लिए हमारे दिल में घोर तिरस्कार की भावना हुई; परन्तु जब चारों ओर यही बातें होने लगीं; तब हम नगर महत्तर एकत्र हुए और आपके सामने बात प्रस्तुत की।

हां, यह प्रवाद (अपवाद) है। और 'प्रायः प्रवादा लोक निर्मिताः' बातें लोगों में से ही उठती हैं, परन्तु यह प्रवाद युक्ति-युक्त लगता है। आपको इसे क्यों सहन करना चाहिये? जन्म से आज तक प्राप्त की गई कीर्ति को कलंकित क्यों करना चाहिये? सीताजी से सम्बन्धित यह प्रवाद आप सहन करके आप कीर्ति को कलंकित न होने दें।

हे देव, हम आपको विशेष क्या कहें?'

विजय श्रेष्ठि को जो कुछ कहना था, कह दिया ···एक श्वास में कह डाला······ अन्य महत्तर कांप रहे थे। श्रीराम के घर की ऐसी बात करने का क्या परिणाम हो सकता है। इस कल्पना से धूज रहे थे। विजय की बातें श्रीराम ने ध्यानपूर्वक सुनी। ज्यों-

ज्यों वे सुनते गये। दुःख के भार से दबते गये। 'सीता पर ऐसा कलंक!' अवश्य लोक दृष्टि में सीता कलंकित बन चुकी है!' इन वेचारों ने अपने हृदय की असह्य वेदना प्रकट की। इतने पर भी धैर्य धारण कर राम ने नगर-महत्तरों को प्रत्युत्तर दिया।

'हे नगर महत्तरों, आपने यह बात कही, सो अच्छा किया। मैं आपकी उपेक्षा करने वाला नहीं हूं। उसी प्रकार आप भी मेरी उपेक्षा क्यों करने लगे? भक्त जन उपेक्षा करने वाले नहीं होते। आप निश्चय रखना कि एक स्त्री के लिए मैं अपयश सहन नहीं करूंगा।'

राम ने नगर महत्तरों को सन्तोष दिया। कल्पनातीत, संतोष प्राप्त कर नगर महत्तर वहां से विदा हुए और कल्पनातीत दुःख से श्रीराम व्यथित हुए।

श्रीराम के दो विकल्प थे: या तो वे सीता के लिए अपयश सहन करें। या यश को सुरक्षित रखने हेतु वे सीता का विरह सहन करें! श्रीराम को पिता के वचन के लिए वनवास स्वीकारते हुए जो दुःख नहीं हुआ था, वैसा अभूतपूर्व दुःख वे आज अनुभव कर रहे थे।

सीता के विरह की ...... बिना सीता के जीवन की कल्पना भी उनको शून्य बना रही थी। सीता पर आये (लगाये गये) कलंक से अपने आपको मुक्त करने, अपने आपको कलंक से बचाने के लिए, सीता को त्याग करने के अतिरिक्त और कोई उपाय उन्हें दीख ही नहीं रहा था। परन्तु सीता का त्याग करने की कल्पना करते ही उनका हृदय द्रवित हो उठता है।' तो क्या अपयश सहन कर लेना?' दुनियां को जो बोलना, बोले, इस प्रकार मन को समझा कर अपयश की चिन्ता छोड़ देना? परन्तु एक सीता के लिए समस्त राज परिवार के वंश को धक्का लगाना?' श्रीराम दिशा शून्य बन गये। उनके मुख मण्डल पर चिन्ताएं घिर आई। दिन भर असह्य वेदना

सहन करते हुए श्रीराम ने रात्रि के समय स्वयं नगर चर्चा सुनने का निर्णय किया।

संध्या के रंग विलीन हो गये। अन्धकार फैल गया। श्रीराम ने वेश परिवर्तन किया और अकेले ही नगर में निकल पड़े……… जहां जहां दो-चार स्त्रियां या पुरुष एकत्र होकर बातें करते, वहां-वहां से निकलने लगे। वे लोगों की बातें सुनने लगे……… यही बातें……… यही चर्चा पग पग पर श्रीराम सुनने लगे।

:रावण सीता को उसकी लंका में ले गया……… सीता को वहां रखी……… राम सीता को ले आये………सीता को वे सती मानते हैं ………रावण ने सीता का उपयोग क्यों न किया होगा ? रावण सीता को छोड़े क्या ? यह विचार राम ने किया ही नहीं……… रागी मनुष्य दोष देखता ही नहीं………राम को सीता में दोष दीख ही नहीं सकता :

श्रीराम का मस्तक चक्कर खाने लगा……… हृदय में वेदना भटके श्री राम वापस महल में आये……… पलंग में पड़ गये……… विचारों का तुमुल युद्ध होने लगा ………चारों ओर अन्धकार ही दिखाई पड़ रहा है…… क्या कहना ? क्या नहीं कहना ? एक ओर प्राणों से भी अधिक प्रिय सीता……… दूसरी ओर राजपरिवार का निर्मल यश ……… किसका त्याग करना ? ……… किसकी रक्षा करना ?

कर्मों का विचित्र उदय कब हो जाय और कब जीवन को अन्धकारमय बना दे…… कौन कह सकता है ? ऐसे कार्य से बंधे हुए जीव इस संसार में घोर वेदनायें सहन करते हुए चारों गतियों में रहे हैं। धिक्कार हो ऐसे कर्मों को………

श्री राम की निद्रा उड़ गई है……… सारी रात अकथ्य वेदना में व्यतीत की।

११. : सीता-त्याग

'क्या यह मेरी भ्रमणा तो नहीं है ? नगर महत्तरों के मुख से सुनी हुई बातें मेरे मस्तिष्क में चक्कर लगा रही हैं ·····नगर चर्चा में मुझे मेरे मन की ही प्रतिक्रिया तो नहीं सुन पड़ी हो। मेरे अत्यन्त विश्वास पात्र गुप्तचरों को नगर में भेजकर लोक चर्चा की जानकारी प्राप्त करूँ ? हां, मुझे निर्णय कर ही लेना है।'

श्री राम ने स्वागत विचार किया। गुप्तचरों को बुलाकर नगर चर्चा की जानकारी प्राप्त कर लाने की आज्ञा प्रदान की। गुप्तचर चले गये। श्रीराम अपने शयन कक्ष में अस्त-व्यस्त मनोदशा में चक्कर लगा रहे थे। इसी समय द्वारपाल ने आकर निवेदन किया।

'महाराजा की जय हो' श्रीराम ने द्वारपाल के सामने देखा। द्वारपाल बोला:—

वानर द्वीप के अधिपति सुग्रीव और राक्षस द्वीप अधिपति महाराजा विभीषण आपके दर्शन करना चाहते हैं।'

'उनको बहुत सम्मानपूर्वक ले आओ' द्वारपाल नमन करके गया और तुरन्त ही दोनों राजेश्वरों को लेकर आ पहुँचा। सुग्रीव तथा विभीषण ने श्रीराम को प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। रामचन्द्रजी ने कुशल पृच्छा की। कुशाग्र बुद्धि सुग्रीव ने श्रीराम की अन्य मनस्कता को भांप लिया। विभीषण ने भी उनकी मनःस्थिति

का अनुमान किया, परन्तु वे कारण समझ नहीं पाये। सुग्रीव ने उनकी ऐसी व्यग्रता एक समय देखी थी, जब सीताजी को रावण उठा ले गया था और चारों ओर खोज करने पर भी उनका कहीं पता नहीं लगा था और श्रीराम सुग्रीव को सहायता करने किष्किन्धा पधारे थे ··· और दूसरी बार भी ऐसी ही व्यग्रता देखी थी, जब रावण की 'अघोध्यपतियां' विद्या में लंका युद्ध के समय लक्ष्मण जी को गिरा दिया था और वे बेहोश हो गये थे।

सुग्रीव और विभीषण सामने बैठे थे, तो भी श्रीराम आकाश की ओर देख रहे थे ·····वे सीता के विषय में विचार मग्न थे। दूसरी ओर लक्ष्मण जी को लोक चर्चा की कुछ गन्ध आगई। नगर महत्तर भी श्री राम के पास आकर मिल गये थे और उसके बाद रामचन्द्र जी खिन्न हो गये थे।' यह बात भी उनके कानों पर पहुँच चूकी थी। वे शीघ्रतापूर्वक राम के महल में आ पहुँचे तथा सीधे ही शयन कक्ष में जाकर चरण वन्दना की :

श्री राम तो अपने विचारों में ही तल्लीन हो रहे थे, मैंने जिस सीता के लिए राक्षस कुल का क्षय किया ··· रौद्र युद्ध किया ··· अरे रे ····· उसी सीता के लिए यह क्या आपत्ति आ पड़ी ? मैं जानता हूँ सीता महासती है···· रावण स्त्रीलोलुप था ·· मेरा कुल निष्कलंक है ··· अरे इस राम को क्या करना चाहिए ? मैं कैसी विकट स्थिति में फँस गया हूँ ?'

उसी समय गुप्तचरों ने प्रवेश किया, श्रीराम और लक्ष्मणजी को नमन करके उन्होंने निवेदन किया, 'महाराजा अयोध्या की गली गली में ·· चौराहों और बाजारों में बस एक ही चर्चा है ··· 'सीताजी पवित्र निष्कलंक नहीं हो सकती···· रावण के घर दीर्घकाल तक रही हुई सीताजी को रावण की लोलुपता छोड़ सकती थी क्या ? हे नाथ, प्रजा तरह तरह की बातें कर रही है·······'

गुप्तचरों की बातें सुन कर लक्ष्मण जी रोष से धमधमा उठे, (तमतमा उठे)।

'देवी सीता महासती हैं ··· ·· किन्हीं खास कारणों से यह दोष निकालने में आया मालूम होता है, भले हो, जिन्हें निन्दा करनी हो, वे करें, इन निन्दकों का यमराज यह लक्ष्मण बैठा है। इन बातों को लक्ष्मण सहन नहीं कर सकता?' लक्ष्मणजी के शब्दों से गुप्तचर धूजने लगे, श्रीराम बोलेः-

'लक्ष्मण, पहले नगर-महत्तर मेरे पास आये थे, उन्होंने मुझे सीता के विषय में नगर में फैले हुए अपवाद की बात की थी, उसके मैंने स्वयं नगर चर्चा अपने कानों से सुनी, और तत्पश्चात् मैंने इन गुप्तचरों को पुनः नगर चर्चा की जानकारी प्राप्त करने का आदेश दिया, अतः इन चर पुरुषों ने तो केवल लोक चर्चा का पुनः कथन मात्र किया है।'

'भले ही परन्तु आप इन बातों का ध्यान में मत लेना।'

'ध्यान मैं लिए बिना चल ही नहीं सकता ··· सीता को मैंने लंका जाकर स्वीकार की···· यही इस अपवाद का मूल कारण है। अब तू सीता के त्याग में विघ्न डाल कर पुनः अपवाद का कारण मत बन!'

सीताजी के त्याग की बात सुनकर लक्ष्मण जी विह्वल हो गये। वे बोले :

'हे आर्यपुत्र, लोगों की बातों से प्रेरित होकर आप सीताजी का त्याग मत करो। लोगों का मुँह बांधा नहीं जा सकता। मन माने ढंग से देवी सीता को कलंकित करने वालों को भले ही आप दण्डित न करो, परन्तु उनकी उपेक्षा तो करनी चाहिये। इन लोगों की बातों को ध्यान में लेकर कोई कदम नहीं उठाना चाहिये।'

'लक्ष्मण, तू कहता है सो सत्य है, लोकस्थिति हमेशा ऐसी ही होती है, परन्तु यशस्वी (यश:कामी) राजाओं को सर्वलोक विरुद्ध का त्याग करना ही चाहिए।'

लक्ष्मण जी स्तब्ध हो गये, सुग्रीव और विभीषणजी शून्य-मनस्क होकर चले गये। सारी परिस्थिति उनके ध्यान में आ गई।

लक्ष्मण के अंग-अंग में रोष व्याप्त हो गया, वे आसन पर से खड़े हो गये और बोले :

'यश अपयश का कोई महत्व नहीं, अपने यश के लिये महासती सीताजी का त्याग करना किसी भी प्रकार से उचित नहीं है। सर्वथा अनुचित है। सीता के सतीत्व के विषय में यदि आप निःशंक हैं, तो लोगों की बातों से, लोगों द्वारा चलाये गये अपवाद से भयभीत क्यों होना चाहिये? यदि आप अपयश से मुक्त होने के लिए देवी सीता का त्याग करोगे, तो इस देवी सीता का क्या होगा? इसका आपने विचार किया है क्या? आपके बिना सीता जी सकेंगी क्या? आप हनुमान को पूछो कि देवरमण उद्यान में आपके बिना देवी सीता की क्या परिस्थिति थी? उन्होंने अन्न जल का त्याग कर दिया था। अति आग्रह से अंजना पुत्र ने पारणा करवाया था। अपकीर्ति के भय से सती सीता का त्याग करना बिलकुल अनुचित है।'

लक्ष्मणजी का शरीर काँप रहा था। श्रीराम के मुख पर दृढता सूचक रेखाएँ उभर आई थी। लक्ष्मणजी की बात ...... तर्क का प्रत्युत्तर देते हुए श्रीराम बोले :

'सीता का त्याग करना मेरे लिये अनिवार्य है।' तत्काल द्वारपाल को बुलाकर सेनापति कृतान्तवदन को बुलवाने का सन्देश भेजा। कृतान्तवदन आ पहुँचे। श्रीराम लक्ष्मण को नमन करके खड़े रहे।

'कृतान्त वदन, किसी अरण्य में सीता को छोड आओ।'

'परन्तु आप विचारो ··· आर्यपुत्र ··· सीतादेवी अभी गर्भवती है ···ऐसी स्थिति में ···'

'भले ही गर्भवती हो, इसका त्याग करना ही पड़ेगा···' श्रीराम आसन पर से खड़े हो गये ··· लक्ष्मणजी उनके चरणों में गिर पड़े ··· आँखों में से चौधार (धारा प्रवाह-अजस्र) आंसू बहाते हुए बोले :

'महासती सीता का त्याग अनुचित है ··· त्याग मत करो'

'अब मुझे एक शब्द भी बोलना नहीं···' श्रीराम ने मुख फिरा लिया और कृतान्तवदन को कहा .

'सेनापति, देवी सीता को सम्मेतशिखर की यात्रा का दोहद है। अतः सम्मेत शिखर की यात्रा के बहाने से तू इसे वन में ले जाना और वहां छोड़ देना।'

लक्ष्मणजी आंसू बहाते हुए वहां से अपने महल में चले गये। श्रीराम की मर्यादा के बन्धन ने लक्ष्मणजी को निरुपाय बना दिया था। लक्ष्मण वासुदेव थे, सत्ता और शक्ति के स्वामी थे, परन्तु श्रीराम के अवगणना करके (उपर होकर) महासती सीता की रक्षा नहीं कर सके। सीता के प्रति भक्ति भाव के कारण लक्ष्मण व्याकुलता ·······वेदना और व्यथा से (परिपीडित) हो रहे थे परन्तु कुछ भी नहीं कर सके ····श्रीराम की आज्ञा उनके लिये अलंघ्य थी।

सेनापति कृतान्तवदन !

कुछ भी हो, वह तो राज्य का सेवक था ····· महासती को भयानक वन में छोड़ आने का काम उसे करना ही था। शत्रुओं के लिये वह यमराज था, मित्रों के लिए नहीं। महासती के लिये उसके

हृदय में अपार श्रद्धा थी, परन्तु श्रीराम के समक्ष बचाव करना उसे व्यर्थ प्रतीत हुआ। 'जहां लक्ष्मणजी की श्रीराम ने अवगणना करदी, वहां मेरा क्या चल सकता है। सेनापति का हृदय वेदना से भर गया। हृदय में व्यथा और आंखों में आंसू लेकर कृतान्तवदन सीताजी के महल में पहुँचे, रथ को महल के द्वार पर खड़ा करके वे सीताजी के आवास में गये। परिचारिका ने सीताजी को सेनापति के आगमन की सूचना दी। सीताजी स्वस्थ बनी और सेनापति ने प्रवेश किया। सीताजी को नमन करके निवेदन किया :

'श्रीरामचन्द्रजी का सेवक को आज्ञा है कि महादेवी का यात्रा मनोरथ पूर्ण करना। आपकी इच्छा सम्मेतशिखर की तीर्थ यात्रा करने की है, तो आप पधारो। रथ नीचे ही तैयार खड़ा है' कृतान्त-वदन हृदय को दृढ़ करके नीची दृष्टि रख कर बोल गया।

सीताजी श्रीराम का संदेश सुनकर प्रसन्न हो गई। बहुत समय से उन्हें सम्मेतशिखर की यात्रा का दोहद उत्पन्न हुआ था। उन्होने श्रीराम को दोहद की बात भी की थी। आज वह दोहदपूर्ण होने की आशा जन्मी ! सीताजी को दूसरी कोई तैयारी करनी ही नहीं थी ......वे शीघ्र ही वस्त्र-परिवर्तन करके राजमहल की सीढियां उतरने लगी।

वे क्या जानती थी कि उनके प्राणप्रिय पति श्रीराम आज उनके साथ कपट कर रहे हैं ? वे क्या जानती थी कि उन्हें तीर्थयात्रा पर नहीं, पर वन-यात्रा पर ले जाया जा रहा है ? वे क्या जानती थी आज अयोध्या के राजमहल की सीढ़ियां वे सदा सर्वदा के लिये उतर रही हैं ?

सीताजी ....! जिन सीताजी ने सतित्व की रक्षा के लिये लंकापति के सामने अपार दृढ़ता और मेरू तुल्य निश्चलता बतलाई

थी ……उन्हीं सीता के सतित्व में अयोध्या की प्रजा ने अविश्वास घोषित किया ! जिन सीताजी के सतित्व का जय घोष देवलोक के देवों ने दिया था ……श्रीराम ने सुना था … उन्हीं सीताजी के सतित्व में प्रजा द्वारा दी गई शंका से प्रेरित होकर श्रीराम ने सीता के विश्वास का लाभ उठा कर उनका त्याग कर दिया ! हां, सीता-त्याग करने में श्रीराम को अपार दुःख था … सीता के विरह का दावानल धधक रहा था ……परन्तु क्या हो सकता है ? जहां पाप कर्मों का उदय होता है, वहां ऐसी अकल्पित घटनाएं बनती ही हैं, अकल्पित दुःख आ पड़ते हैं … अकाल में ही आपत्ति के घनघोर बादल चढ़ आते हैं और जीवन पर छा जाते हैं।



१२. : सिंहनिनाद वन में

सीताजी अर्थात् सरलता की मूर्ति

न कोई शंका और न कोई अविश्वास ।

सरल प्रकृति के मानव को प्रायः स्नेही जनों ····· परिजनों की प्रकृति में शंका उत्पन्न होती ही नहीं। सीताजी को सेनापति के कथन में किसी प्रकार की शंका नही हुई····अपसकुन भी हुए और अशुभ निमित्त भी हुए ·······तो भी सीताजी निःशंक होकर रथ में आरूढ़ हुई। रथ के चारों ओर पर्दे डाल दिये गये और पवनवेगी अश्व सीताजी को अयोध्या से दूर ही दूर खींच ले गये। सेनापति से सीताजी ने इतना भी नहीं पूछा कि 'आर्यपुत्र पीछे के रथ में आ रहे हैं न ? अन्य परिजनों को लेकर कौन आ रहा है ? अभी पीछे के दूसरे रथों के आगमन की ध्वनी क्यों नहीं सुनाई पड़ रही है ?'

गंगा नदी के तट पर रथ आकर खड़ा हुआ, तट पर नाव तैयार थी। रथ को नाव में चढ़ा कर कृतान्त वदन ने गंगा पार की। रथ को उतार लिया, और 'सिंह निनाद' नामक वन में प्रवेश किया, वन के मध्य भाग में रथ को ठहरा कर कृतान्तवदन नीचे उतरा। उसके मुख पर ग्लानी थी, आंखें आसुओं से भरी थीं, शरीर काँप रहा था। सीताजी ने कृतान्तवदन को देखा और पूछा :

'सेनापति रथ क्यों खड़ा किया ?' सेनापति की दृष्टि जमीन पर गड़ी थी। सीताजी ने सेनापति की आँखो में आँसू टपकते देखकर चिन्तित स्वर में पूछा —

'अरे कृतान्त वदन, आँखों में अश्रु क्यों ? इस समय शोक क्यों ? क्या मार्ग भूल गये ? कोई भय उपस्थित हुआ है ? यह सब सीताजी ने एक श्वास में पूछ लिया, अब तो उत्तर दिये बिना चल ही नहीं सकता '' उसने कहा :

'देवी, क्या कहूँ जो कहने लायक नहीं ··· '' जो बोलने लायक नहीं '' '' जो करने लायक नहीं '' वह मुझे करना पड़ता है ······ कारण की मैं सेवक हूँ ··· सेवक को नहीं करने योग्य घोर अकार्य भी करना पड़ता है।'

'मैं कुछ भी नहीं समझ पाती, सेनापति स्पष्ट शब्दों में कहो सीताजी की विह्वलता बढ़ती ही गई।

'अपयश के भय से श्रीराम ने आपका त्याग किया है ···· देवी '

'किस बात का अपयश ? किस बात के लिए त्याग ?'

'लोगों ने आपके लिए बातें फैलायी है कि सीता रावण से दूषित है, ऐसी सीता को राम ने स्वीकार की · · ' जब चर पुरुषों ने नगर चर्चा को सुनकर श्रीराम को कही–तब से श्री राम ने आपका त्याग करने की बात कही, तब लक्ष्मण ने घोर विरोध किया, श्री राम को बहुत समझाया, पर वे नहीं माने '' लक्ष्मण जी रुदन करते हुए अपने महल में चले गये, और श्री राम ने इस भीषण वन में छोड़ कर आने का आदेश मुझ पापी को दिया · ··· यह भीषण वन ···· जो साक्षात् मृत्यु का ही द्वार है '' उसमें, हे देवी, आप मात्र आपके सतीत्व के प्रभाव से ही जी सकेंगी ·····'

कृतान्तवदन का वज्र हृदय ढुसक-ढुसक रो पड़ा ।

सीताजी मूर्छित होकर रथ में से गिर पड़ी ।

सीताजी के मूर्छित देह को देख कर 'महासती के प्राण उड़ गये ···· ' ऐसी कल्पना सेनापति को हुई । वह हृदय विदारक रुदन करने लगा, 'अरे ··· मैं कैसा पापी ·· · कैसा दारुण पाप मुझे करना पड़ा ·· महासती की मृत्यु' वह हतबुद्धि···· हतप्रभ होकर जमीन पर लोटने लगा भंयकर सिंह निनाद वन के पशु भी स्तब्ध हो गये ······· मानो वन ही रोने लगा रथ के अश्व विह्वल हो गये ·· ····

भारत की महासती ·· ·· श्री राम की अर्धांगना ······ अयोध्या की महारानी ·· आज भीषण वन में मूर्छित होकर जमीन पर पड़ी है ·· रणभूमि में लाखों सुरमाओं को पराजित कर देने वाला सेनापति ····· असहाय ··· निःसहाय बनकर चिल्ला-चिल्लाकर रो रहा है ·······संसार की इस घटना को देखने वाला कौन व्यक्ति संसार को चाहेगा ? तो संसार की भीषणता है । यह किस समय क्रूर बनकर जीव पर टूट पड़े ··· · कोई निश्चित नहीं ।

सिंह निनाद वन का वायु सीताजी की सहायता पर दौड़ आया । वन के पंखी अपनी पाँखों में शीतल पानी भर लाए······· सीताजी की मूर्छा दूर हुई ··· उन्होंने चारों ओर देखा 'हे राम ······· कहते ही वे पुनः मूर्छित हो गयी, परन्तु कृतान्त वदन को इतना आश्वासन हुआ कि सीताजी जीवित है, फिर मूर्छा दूर हुइ, सीताजी ने कृतान्त वदन के सामने देखकर पूछा :

'यहां से अयोध्या कितनी दूर है ? श्री राम कहाँ हैं ?'

'देवी, अयोध्या दूर हो या पास हो, पूछने से क्या लाभ ?

श्री राम को याद करने का क्या प्रयोजन ? उग्र आज्ञा प्रदान करने वाले श्रीराम की कल्पना ही छोड़ दो ।''

'क्या श्रीराम ने मुझे सर्वथा ही तज दी है ? अब मुझे.......'

'हाँ देवी, श्री राम ने आपका सर्वथा त्याग कर दिया है, अन्यथा ऐसे भीषण वन में किसलिए .... ?

सेनापति रो पड़ा, सीताजी के मुख पर गम्भीरता छा गयी, उन्होंने कुछ विचार किया और सेनापति को कहा--

'हे भद्र, भले ही आर्यपुत्र ने मेरा त्याग किया, परन्तु उनके प्रति मेरे मन में श्रद्धा है, भक्ति है । तू आर्यपुत्र को मेरा संदेश कहना कि आपको लोक निन्दा का भय लगा, अपकीर्ति का भय लगा, तो आपने मेरी परीक्षा क्यों नहीं की ? आप मेरी शंकाओं को दूर कर सकते थे । जहां शंका होती है, वहां 'दिव्य' किया जा सकता है ..... परन्तु आपने ऐसा नहीं किया .....हां मेरे अशुभ कर्म ... इस भीषण वन में मैं भोगूंगी । मेरा भाग्य पूरा हो चुका है । अभागिनी हूं....... परन्तु क्या आपने अपने विवेक के अनुरूप कदम उठाया है .... ? आप विश्व के श्रेष्ठ पुरुष हैं । सारा विश्व आपको विवेकी पुरुष समझता है । मैं भी विवेकी मानती हूं .... आपका यह कदम विवेक के अनुरूप नहीं है । आप आपके कुल को कलंक से बचाने हेतु तत्पर हुए और मेरा त्याग किया । क्या आपके उज्जवल कुल के लिए भी एक निष्कलंक निरपराधिनी स्त्री का ऐसे भीषण वन में त्याग कर देना उचित है ? क्या आप स्वयं मेरे सतीत्व के विषय में निःशंक नहीं थे ? क्या वत्स लक्ष्मण के मन में मेरे सतीत्व के विषय में निर्मल धारणा नहीं थी ? क्या लोकोपवाद से बचने का कोई दूसरा उपाय था ही नहीं ? भले, मेरे पूर्वकृत पापों के उदय से आने वाले दुखों को मैं

भोगूंगी ··· संसार ही दुःख भरा है, परन्तु अधम पुरुषों के कहने पर जिस प्रकार आपने मेरा त्याग किया उस प्रकार मिथ्या दृष्टि जीवों के कहने से जिन भाषित धर्म का त्याग मत कर देना।

इतना बोलते-बोलते सीताजी का कंठ भर आया, आंखें आंसुओं से परिपूर्ण हो गयी और पुनः मूर्छित होकर वे जमीन पर गिर पड़ी। कृतान्तवदन हा देवी कहता हुआ जोर-जोर से रोने लगा' अश्वों के नेत्र भी सजल हो गये ·· कुछ क्षण बीते ······मूर्छा दूर हुई और सीताजी ने आंखें खोली।

खड़ी होकर कृतान्त वदन को कहने लगी :

'मेरे बिना श्रीराम कैसे जीवेंगे? अरे मैं जीवित होती हुई भी श्रीराम के लिए मरी हुई हूँ ···· हे वत्स श्री राम का कल्याण हो, लक्ष्मण को मेरा आशीर्वाद कहना, और हे वत्स, शिवास्ते सन्तु ······ पन्थानः तू श्रीराम के पास जा ··· ?

सेनापपि विधि की क्रूरता का विचार करता है। महासती सीता और महामना श्रीराम · दम्पत्ति के छिन्न भिन्न जीवन पर आँसु बहाता है। पत्थर की एक शिला के सहारे बैठी हुई सीता को देखता है ·· बारम्बार इस सती को प्रणाम करता है ·····रथ के पास जाकर घोड़ों की पीठ पर हाथ फिराता है। अश्व पांव पछाड़ते हैं मुख हिलाकर मानों अयोध्या की ओर मुड़ने से इंकार करते हैं। सेनापति जंगल में चारों ओर देखता है। 'इस जंगल में महासती को रहना है। किसके सहारे? क्या यह क्रूरता नहीं है। वह हत बुद्धि होकर रथ में बैठता है, और रथ को अयोध्या के मार्ग पर चलाने लगता है।

जहाँ तक सीताजी के दर्शन होते रहे, वहाँ तक उनके समक्ष देखता ही रहा।

सती साध्वी सीता विमल चरिता शुद्ध हृदया ।
पति रामो यस्या दशरथसुतो विश्वविदितः ।।

परित्यक्ता भर्चा तदपि गहने घोर भयदे ।
विचित्रा नूनं प्राक्तन जनि कृतीनां परिणतिः ।।१।।



१३ : श्रीराम का करुण विलाप

भयावना जंगल !

उस भयानक जंगल में कमल-कोमल सीताजी भयभीत होकर भटक रही है। न तो वहां कोई राज मार्ग है और न ही कोई पगडंडी ...... वहाँ फैले हुए है कांटे और झाड़िया। सीताजी अपनी आत्मा की ही निन्दा कर रही है। 'मेरे जीवन ने पूर्व जन्मों में भूल-भालकर जो पापचरण किया है, वही आज उदय में आया है वह मुझे भोगना ही पड़ेगा ? कर्म का यह सिद्धान्त उन्हें क्षणिक आश्वासन देता है, और फिर उनका हृदय भर आता है, रो पड़ती है रोना .... गिरना और चलते जाना .....कहां जा रही है यह तो वे जानती नहीं। कब भोजन मिलेगा, यह विचार ही नहीं आता, कहां आश्रय मिलेगा, इसकी चिन्ता ही नहीं ..... वे तो चलती ही जाती है।

वहां जंगल में एक विशाल मैदान था। उसमें सैकड़ों सैनिकों का पड़ाव था.... ...सीताजी ने सैनिकों को देखा क्षण भर वे कांप उठी .. ....परन्तु उनका मन तो अब मृत्यु और जीवन समान ही था। न तो उन्हें मृत्यु का भय था न ही जीवन का मोह ! वे स्वस्थ्य बनकर आंखें बन्द करके श्री नमस्कार महामत्र का स्मरण करती हुई खड़ी हो गयी।

सैनिकों की दृष्टि सीताजी की ओर गई.......सैनिक स्तब्ध हो गए भयभीत हो गए.......

दिव्य रूप !

अपूर्व तेज !

क्या यह कोई वन देवी है। सैनिक परस्पर बातें करने लगे। सीताजी की ओर बार-बार देखने लगे।

'अपने महाराजा को निवेदन कर दें।' यह विचार कर सैनिक राजा के पास दौड़ गए। सीताजी का धैर्य टूट गया। वे रो पड़ी। जमीन पर बैठ गई, उनके करुणरुदन ने वन को द्रवित कर दिया, रुदन का शब्द राजा के कानों पर पड़ा। वे स्वर के जानकार थे। अपने तम्बू में बैठे-बैठे ही उन्होंने निर्णय दिया 'यह ध्वनि किसी गर्भवती महासती की है। तत्काल वे सीताजी के पास पहुँच गये, राजा करुणापात्र थे, परन्तु सीताजी शंका से कांप उठी, तुरन्त ही अपने शरीर के आभूषण उतार कर राजा के सामने रख दिए।

'हे भगिनी ! तू तनिक भी भय मत रख ! ये आभूषण तेरे ही हैं। और तेरे ही अंग पर यह रहेंगे। हे बहिन ! तू कौन है ? यहां इस वन में तेरा त्याग किसने किया ? कौन ऐसा अति निर्दय पुरुष है जिसने यहां पर महासती को छोड़ दिया है ? तू कह, निःशंक बनकर कह, तेरा कष्ट मुझसे देखा नहीं जाता मेरा हृदय दुःखित हो रहा है। राजा ने करुणापूर्ण शब्दों में सीताजी से कहा। सीताजी की दृष्टि जमीन पर गड़ी हुई है, उनको राजा के स्वर में निर्मलता और सरलता (निष्कपटता) प्रतीत हुई, उनका भारी हृदय कुछ हल्का हुआ। उसी समय राजा के मंत्री सुमति ने सीताजी को सम्बोधित करके कहा :

'हे महासती ये राजा वज्रजंघ है, पिता गजवाहन और माता बन्धुदेवी के सुपुत्र हैं, पुण्डरीक नगरीक के विशाल राज्य के ये अधिपति है। ये आर्हत धर्म के उपासक हैं, महान सत्वशील और परनारी

सहोदर है, वे हाथियों को पकड़ने के लिए सेना सहित इस जंगल में आये हैं। हाथियों को लेकर वापस जाने वाले ही थे कि तेरे रुदन का स्वर सुनाई पड़ा और तेरे दुःख से दुखी होकर यहाँ आये हैं। इस-लिए तू निर्भय होकर इनको अपना दुःख कह।'

महामंत्री सुमति ने राजा का परिचय दिया। सीताजी को मंत्री पर विश्वास हो गया, उन्होंने जैसे ही अपना परिचय दिया, राजा और मन्त्री स्तब्ध हो गए। 'ये श्रीराम की अर्धांगना सीता है ·· ' यह जानकर राजा और मंत्री ने उनकी वन्दना की। महासती के दर्शनों से उल्लसित हुए—परन्तु जैसे ही सीताजी ने अपनी करुण कथा सुनायी, राजा और मंत्री दोनों चौधार अश्रु बहाने लगे। सीताजी रोती जाती है, बोलती जाती है, और रुलाती जाती है ···· महाराजा वज्रजंध ने सीताजी कहा—

'हे महादेवी, तू मेरी धर्म बहन है। एक धर्म को आचरने वाले परस्पर बन्धुजन है। तू मुझे भामण्डल मान और मेरे घर को पवित्र कर। स्त्रियों के लिए पतिगृह के बाद मातृगृह ही आश्रय होता है। और तू चिन्ता मत करना। श्रीराम ने लोगों के कहने पर तेरा त्याग किया है। उनको तो अब घोर पश्चाताप हो रहा होगा, और तेरे समान ही वे दुःखी हो रहे होंगे। वे अल्पकाल में ही तेरी तलाश करने निकल पड़ेंगे। तेरे विरह से व्याकुल दशरथ नन्दन चक्रवादी के बिना चक्रवाक के समान वेदना का अनुभव कर रहे होंगे। महा-सती तू निश्चित होकर और निर्भय बनकर पुण्डरीक नगरी में चल। मेरे भाग्योदय से ही इस भीषण वन में तेरे समान भगिनी मुझे मिल गयी।'

वज्रजंध राजा के आश्वासन में सीताजी के व्यथित हृदय को अपूर्व आश्वासन मिला। उन्होंने गर्भस्थ जीवों के हित के लिए भी पुण्डरीक नगरी जाना उचित समझा। सीताजी की सम्मति मिलते

ही तुरन्त एक शिविका (पालकी) तैयार की गयी और उनको बहुत सम्मानपूर्वक शिविका में बिठलाकर राजा वज्रजंघ ने पुण्डरीक नगरी की ओर प्रयाण किया।

....

सेनापति कृतान्त वदन अयोध्या पहुँचा। श्रीराम को नमस्कार कर उसने कहा :

'हे देव, सिंह निनाद नामक वन में मैंने सीताजी को छोड़ दिया है। उन्हें छोड़कर सीधा यहां आया हूं। देवी वारम्बार मूर्छित हो जाती थी, और वारम्बार चेतना प्राप्त करती थी। जैसे-तैसे धैर्य धारण कर के उन्होंने इस तरह संदेश कहलवाया है—

'किस नीतिशास्त्र में या किस देश में ऐसा आचार है कि एक पक्ष द्वारा किए गए दोषारोपणों से दूसरे पक्ष को सुने बिना दण्डित करना।' सदैव विचार विवेक संपन्न ऐसे आपने यह कार्य कुछ भी विचार किए बिना किया है, इसमें दोष मेरे दुर्भाग्य का ही है। आप तो सदैव निर्दोष है। परन्तु हे नाथ, जिस प्रकार दुष्ट जनों द्वारा किए गए अपवाद से मुझ निर्दोष को आपने त्याग दी, उसी प्रकार मिथ्या दृष्टियों की वाणी से प्रेरित होकर आप आर्हत धर्म का त्याग मत कर देना।' इस प्रकार का संदेश देकर देवी सीता मूर्छित होकर पृथ्वी तल पर गिर पड़ी थी। वन के शीतल पवन से मूर्छा दूर होने पर वे करुण स्वर में विलाप कर उठी थी, मेरे बिना राम किस प्रकार जी सकेंगे। हाय-हाय मैं तो मार डाली गयी.....'

सेनापति की बात सुनते ही श्रीराम मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। महल में हाहाकार मच गया, लक्ष्मणजी दौड़ते हुए वहां आ पहुँचे। तुरन्त शीतल चन्दन का श्रीराम के शरीर पर विलेपन

किया गया, और शीतल जल के छींटे दिए गये, कुछ समय बाद श्रीराम की मूर्छा दूर हुई, और वे करुण रुदन करने लगे गद्-गद् स्वर में बोले :

'कहां है यह महासती सीता ? कृतान्त वदन तू उसे कहां छोड़ आया ? अरे मैंने दुष्ट लोगों के वचन सुनकर इस महासती को त्याग दिया ·· सदा के लिए उसका त्याग कर दिया ······मैंने बहुत ही अविचारित कार्य कर डाला इस भीषण वन में सीता का क्या हुआ होगा ?' श्रीराम लक्ष्मण जी की गोद में मस्तक रख कर रो पड़े। लक्ष्मणजी ने कहा : 'हे प्रभो, महासती अपने शील के प्रभाव से अभी उस वन में होगी। अभी ज्यादा समय नहीं बीता है। आप स्वयं उस वन में पधारो ··· ···देवी सीता की तलाश करके यहां ले आओ·······विलम्ब मत करो। अन्यथा आपके विरह से व्यथित होकर वे मृत्यु को प्राप्त हो जावेगी।

क्या उस भयंकर वन में अभी तक सीता जीवित होगी ?

'अवश्य उनके शील के प्रभाव से !'

'तो मैं अभी ही जाता हूं।'

श्रीराम खड़े हो गए, लक्ष्मण जी साथ में जाने को तैयार हुए, सेनापति और विभीषण आदि भी तैयार हुए। पुष्पक विमान में बैठकर उन्होंने सिंह निनाद वन का मार्ग लिया।

विमान सिंह निनाद वन के ऊपर आ पहुँचा। जिस स्थल पर सेनापति ने सीताजी का त्याग किया था, उसी स्थान पर विमान को नीचे उतारा गया और सब विमान से नीचे उतर गए। चारों ओर सीताजी को ढूंढने लगे। श्रीराम हे सीता हे सीता पुकारते हुए चारों ओर भटकने लगे। लक्ष्मण ऊंचे वृक्षों पर चढ़-

कर चारों तरफ देखने लगे। सेनापति जंगल की खोहों और झाड़ियों में पहुँच कर ढूँढने लगा। विभीषण श्रीराम के पीछे 2 चलने लगे।

प्रत्येक स्थल, प्रत्येक जलाशय, और प्रत्येक पर्वत ढूंढ डाला। प्रत्येक वृक्ष भी देखा, पर सीताजी नहीं मिली।

निराशा ..... हताश का अनुभव करते हुए दुःख के भार से दबे हुए श्रीराम जमीन पर बैठ गए। लक्ष्मण, विभीषण आदि भी अत्यन्त दुखित हृदय से पास आकर बैठ गए, श्रीराम बोले, ऐसे भयंकर वन में जानकी किस तरह जीवित रह सकती है?

अवश्य ही बाघ, सिंह या अन्य कोई पशु सीता का भक्षण कर गया होगा .. ।' सीता की मृत्यु की कल्पना से श्रीराम का हृदय टूट गया। इतने पर भी पुनः-पुनः सीता की खोज करने के लिए चारों ओर भटकने लगे .. .. जगल में फैले हुए घास पर सीताजी के पदचिन्ह भी कैसे मिल सकते थे। श्रीराम का हृदय किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया।

'हे प्रभो, समग्र वन ढूंढ डाला, सीताजी नही मिली, अब यहां ठहरने में विशेषता भी क्या है?' विभीषण ने कहा—

'हां, सत्य है ... अब इस जीवन का भी कोई प्रयोजन नही है.... ......सीता विना जीवन जीने में क्या विशेषता है?' श्रीराम की आखों मे आँसू झलक आए और टपक पड़े।

संध्या हो गयी थी। सब पुष्पक विमान में बैठ गए और वापस अयोध्या आ गए। अयोध्या का महल तेज विहीन था। सबों का मुख ग्लानि, उद्वेग और दुख से परिपूर्ण था।



४१ : लव और कुश

महासती सीता पुण्डरीकपुर पहुँची। उन्हें पुण्डरीकपुर में दूसरी मिथिला के दर्शन हुए। राजा वज्रजंघ में भ्राता भामण्डल के दर्शन हुए। राजा ने सीताजी को निवास हेतु एक सुन्दर महल दिया, परिचारिकाएँ दी, और सीताजी को किसी प्रकार की न्यूनता का अनुभव न हो, इस प्रकार से सारी व्यवस्था की। उनको राजा ने कहा-हे महासती, तू यहां निःशंक बनकर रह, यह तेरे बान्धव का घर है। यहां तू किसी प्रकार का खेद मत करना। अल्प समय में तेरा सब दुःख दूर हो जायगा।

सीताजी ने राजा को प्रणाम किया, और राजा वापस चले गये। सीताजी धर्मपरायण बनकर गर्भ का पालन करती हुई काल निर्गमन करती रही। कालक्रम से सीताजी ने पुत्र युगल को जन्म दिया। परिचारिका ने तुरन्त राजा वज्रजंघ को समाचार सुनाया। राजा ने नगर में राजकुमारों के जन्म-महोत्सव का समारोह किया ...... खुद को पुत्र प्राप्ति हुई हो उससे भी विशेष उल्लास से राजा ने सीता के पुत्रों का जन्म-महोत्सव सम्पन्न किया। अत्यन्त प्रसन्नता-पूर्वक याचकों को दान दिया।

सीताजी को भी अनुभव हुआ कि अयोध्या में भी इससे अधिक उत्सव नहीं होता। उनका हृदय प्रफुल्लित हो गया। जब सीताजी

ने दोनों पुत्रों को देखा, तब उनका दिल मानों नाच उठा .... ऐसा ही रूप, ऐसा ही लावण्य।

पुत्रों के नामाकरण का दिन आया। राजा वज्रजंघ ने नगर में दूसरा उत्सव घोषित किया। प्रथम पुत्र का नाम 'अनंगलवण' और दूसरे का नाम 'मदनांकुश' रखा गया।

राजा ने उनके लालन-पालन के लिए धात्रियाँ नियुक्त की। बाल उद्यान बनवाया, क्रमशः दोनों कुमार बड़े होते गये। सहज चपलता और स्वाभाविक गुणों से सुशोभित कुमारों ने सीताजी के हृदय को प्रसन्नता से भर दिया। सीताजी के वर्ष अब दिवस के समान व्यतित होने लगे। दोनों कुमार अब तरुण अवस्था के द्वार पर आ पहुँचे। सीताजी ने सोचा कि अब इन कुमारों को कलाओं की शिक्षा प्रारम्भ करदी जानी चाहिए। इनके मुख पर प्रतिभा है, भुजाओं में बल है, और मन में उत्साह है। सीताजी सुयोग्य कलाचार्य की तलाश में ही थी कि एक दिन उनके द्वार एक सिद्ध पुरुष भिक्षार्थ आकर खड़ा रहा, उसका नाम था सिद्धार्थ।

सिद्धार्थ अणुव्रती था। अनेक विद्याओं और कलाओं का स्वामी था। (में पारंगत था।) प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में वह मेरु पर्वत के चैत्यों में वन्दनार्थ जाता। तीनों संध्याओं का समय वह मेरु पर्वत के चैत्यों के वन्दन में व्यतीत करता।) आकाश मार्ग से ही वह आवागमन करता। उसमें जिस प्रकार विद्याबल और कलायें थी, उसी प्रकार उसमें स्वाभाविक नम्रता, निःस्पृहता एवं परोपकार परायणता थी।

सीताजी ने सिद्धार्थ को देखा, उनका आदर किया और बहुत सम्मान देकर आदरपूर्वक पूछा—

'आपका परिचय देने की कृपा करें, मैं आपका कुशल चाहती हूँ।'

सिद्धार्थ ने अपना परिचय दिया। सुनकर सीताजी प्रसन्न हुई। फिर सिद्धार्थ ने उनका परिचय मांगा। सीताजी ने अपना पूरा परिचय दे दिया। और पुत्र जन्म तक का सारा वृतान्त कह सुनाया। सिद्धार्थ के समक्ष उन्होंने अपना हृदय खोल दिया।

सिद्धार्थ ने कहा : हे महासती, वृथा सन्ताप क्यों करती हैं ? लव और कुश किसके पुत्र हैं, उसे संताप करने की क्या आवश्यकता है ? आपके दोनों पुत्र प्रशस्त लक्षण वाले हैं। वे मानों राम लक्ष्मण की ही जोड़ी हों। अल्प समय में हो ये आपका मनोरथ पूर्ण करेंगे।'

सिद्धार्थ अष्टांग निमित्त का परगामी था। लव कुश को देखते ही उनका उज्ज्वल भविष्य उसके सामने तैरने लगा, और उसने उनके भविष्य का चित्रण कर दिया। सीताजी को अपूर्व आश्वासन प्राप्त हुआ। वे बोली—

'हे कलानिधि पुरुष, आप यदि इन बालकों को चाहते हैं, इनके ......भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहते हैं, तो आप यहीं रह कर इन बालकों को शिक्षण दीजिए।'

,देवी, मैं मेरा परिचय आपको दे चुका हूं। मैं एक स्थान पर नहीं रहता। आकाशमार्ग से गमनागमन करता हुआ मैं अहर्निश जिन चैत्यों की यात्रा करता हूं। मैं यहां कैसे रह सकता हूं ?'

'भले ही, अभी तक आपने अपना समय यात्राओं में ही व्यतीत किया है। आपके पास जो कलाएं हैं, जो सिद्धियां हैं, जो ज्ञान है, वह आप किसी को नहीं देंगे क्या ? उनका वारिस आप किसी को नहीं बनायेंगे क्या ? यदि ये बालक आपको सुपात्र प्रतीत होते हों, तो इनको अपना वारिस बनाओ। मेरे जीवन के लिए आश्वासन का यदि कोई आधार है, तो ये बालक ही हैं...... इनके अलावा समस्त विश्व मेरे लिए अन्धकारपूर्ण है।'

'हे महासती, आपका कथन हृदयस्पर्शी है; परन्तु एक स्थान पर रहने के लिए मेरा मन ...'

आपको मन को समझाना ही होगा, आपकी भाग्यहीन धर्म-भागिनी के लिए और इन कोमल बालकों के लिए ...' सीताजी का स्वर गद्गदित हो गया। सिद्धार्थ विचार में पड़ गया 'श्रीराम की यह धर्मपत्नी ... संकटों ... आपत्तियों की मार से जीवन का सारा उल्लास खो चुकी है ...... यह महासती ..... मेरे यहां रहने से इनका जीवन उल्लासमय हो जाता है तो मुझे यहां ठहर जाना चाहिये।' सिद्धार्थ को सीताजी के लिए सहानुभूति हुई।

'हे सिद्धार्थ आपको यहीं रहना पड़ेगा। मैं महाराजा वज्रजंघ को भी समाचार भेजती हूँ। वे भी आपको आग्रह करेंगे।'

'महासती, मैं आपका आग्रह नहीं टाल सकता। मैं यहीं रहूँगा।'

सीताजी प्रसन्न हो गईं। उन्होंने राजा वज्रजंघ को भी बुलवाकर सब बात बताई। राजा भी प्रसन्न हुए। सिद्धार्थ के समान सिद्ध पुरुष लव-कुश को कलाचार्य के रूप में प्राप्त हो जाए तो ये दोनों बालक अवश्य ही सर्व-कलाओं में पारंगत बन सकते हैं। राजा ने सिद्धार्थ को कहा—हे महापुरुष, आपने हम पर महान् अनुग्रह किया है। लवकुश जैसे पुण्यशाली कुमार सचमुच सुपात्र को प्रदत्त आपका ज्ञान अवश्य ही सफल होगा। (फलीभूत होगा)।

'राजन्, महासती के अत्यन्त आग्रह की अवगणना करने की शक्ति मुझ में नहीं है।'

'सत्य है, सिद्धार्थ, यह साक्षात् धर्म मूर्ति है।'

'इसके दोनों बालक असाधारण लक्षणों वाले हैं। दूसरे राम लक्ष्मण ही हैं।

'राम की संतान क्यों न ऐसी होगी।'

'राम को भी पराजित कर दें—ऐसे।'

'आपकी कलाओं को प्राप्त करने वालों के लिये यह भी अशक्य नहीं है।'

'मैं देवी सीता का मनोरथ पूर्ण करूंगा।'

'आपका वचन, सिद्ध वचन है ......'

'भगवान जिनेश्वर का अचिन्त्य प्रभाव है।'

राजा वज्रजंघ ने सिद्धार्थ के लिए रमणीय निवास स्थान की व्यवस्था कर दी। पुष्पवाटिकाओं से परिवेष्टित निवास स्थल मानों एक आश्रम ही था। सिद्धार्थ को भी वह पसन्द आ गया।

प्रशस्त दिवस और मुहूर्त में सिद्धार्थ ने लव-कुश को कलाध्ययन प्रारम्भ करवाया। बालकों में जन्म जात विनय गुण था। दोनों बन्धु विनयी, विवेकी और गुरुजनों का आदर करने वाले थे। मृदु-स्वभाव और कुशाग्र बुद्धि से उन्होंने सिद्धार्थ का पूर्ण स्नेह सम्पादित कर लिया।

गुरु का स्नेह और शिष्य का विनय ...... दोनों एकत्र हो जाने पर ऐसी कौन सी सिद्धि है जो प्राप्त नहीं हो सकती है ?

गुरु का वात्सल्य और शिष्य की नम्रता .. इन दोनों के एकत्र हो जाने पर ऐसी कौन सी कला है जो प्राप्त नहीं हो सकती।

लव और कुश ने अपनी विनम्रता से कलाचार्य सिद्धार्थ का हृदय हर लिया और गुरु ने अपनी कलाएँ, सिद्धियाँ एवं ज्ञान दोनों शिष्यों को श्रमपूर्वक प्रदान करना शुरू किया।

वर्षों की साधना, असीम धैर्य और अपूर्व प्रगति की आवश्यकता थी। उतावल, कंटाला, या उद्वेग को इसमें स्थान नहीं था। दोनों कुमार तरुणावस्था को पारकर के यौवनावस्था में प्रविष्ट हुए, शस्त्र कला एवं शास्त्रकला में पारंगत हो गये। स्वर्ग का देव भी इनके समक्ष थक जाए, ऐसे दुर्धर्ष योद्धा ये बन गये।

सीताजी कभी कुमारों का युद्ध कौशल देखती है, कभी इनकी शास्त्र चर्चा सुनती हैं, कभी गुरु शिष्यों का स्नेह पूर्ण वर्तालाप सुनती है उनका हृदय प्रसन्न हो जता है। जवान पुत्रों की ओर से उन्हें स्नेह, भक्ति और आदर प्राप्त होता है, विनय और सम्मान मिलता है।

लव कुश में यौवन सुलभ उद्धताई ने प्रवेश ही नहीं किया था, सूर्य के प्रकाश से भी अभेद्य मोह-वासना का अन्धकार उन्हें आच्छादित नहीं कर पाया था, और कर्तव्य विमुखता एवं भ्रष्टाचार तो उन्हें स्पर्श ही नहीं कर पाये थे।

राजा वज्रजंघ लव और कुश के विकासमान व्यक्तित्व का अवलोकन करते रहते थे। उनके मनमें लव कुश के विषय में अनेक विचार आते रहते थे। एक दिन उन्होंने सीताजी के समक्ष अपने मन की बात रखी।

देवी अब लव कुश यौवनावस्था को प्राप्त हो गए हैं। अनेकों कलाओं में पारंगत हो गये हैं।

'यह सिद्धार्थ के अविरल परिश्रम का ही परिणाम है।'

'दोनों बालकों ने लगन एवं उत्साह से कलाध्ययन किया है, और कर रहे हैं।'

'आपका भी कितना अधिक लक्ष्य है उन पर।'

'मुझे तो राज्य के कार्य व्यवहार के कारण अवकाश ही नहीं मिल पाता, तो लक्ष्य ही क्या रख सकता हूँ? लक्ष्य तो आपका है। पहली गुरु आप हैं। गुरुणी माता है।'

'मैं तो निमित्त मात्र हूँ। बालकों का पुण्य ही प्रबल है।'

'इनके प्रबल पुण्योदय से आकर्षित होकर मैंने एक विचार किया है . . .'

'निःसंकोच होकर कहिये।'

'शशिचूला का विवाह लव के साथ करने की मेरी इच्छा है।'

सीताजी वज्रजंघ के प्रस्ताव से विचार में पड़ गईं। शशिचूला महाराजा की पुत्री है, सुशील है। समय समय पर सीताजी के सम्पर्क में आती रहती है। लव और कुश का उससे सुन्दर संयोग हुआ है। परन्तु उसी लव का विवाह करना या नहीं, इस विचार से सीता मौन

राजा वज्रजंघ ने सीताजी की अनुमति प्राप्त कर ली। उनका हृदय प्रफुल्लित हो गया। वहां से वे सीधे महारानी लक्ष्मीवती के पास गये और उसके समक्ष अपनी भावना प्रकट की महारानी जी, प्रसन्न हो गई। लव के समान सुयोग्य कुमार ढूंढने पर भी दूसरा नहीं मिल सकता था। शशिचूला को भी इस बात की जानकारी प्राप्त हुई, उसका हृदय आनन्द से भर गया। (आनन्दित हो गया।) वर्षों से लव को देखती थी और उसके प्रति राजकुमारी का आकर्षण बढ़ता ही जाता था।

दूसरी तरफ सीताजी ने लव को पास बिठाकर राजा वज्रजंघ की बात से परीचित किया। लव ने लज्जा से सिर झुका लिया और बोला—

'माता, जो तुझे पसंद है वह मुझे पसंद है (तेरीपसंदगी में ही मेरी पसंद है।) इसमें मुझे क्या पूछना?'

'वत्स, मैं जानती हूँ कि तू मेरी आज्ञा का उल्लघंन नहीं करता है। पर विवाह जैसे विषय में तुझे बात करनी ही चाहिये महाराजा वज्रजंघ के प्रस्ताव को मैंने स्वीकार कर लिया है, क्योंकि उनका अपने ऊपर निःसीय उपकार है, और मुझे उनका प्रस्ताव भी उचित प्रतीत हुआ है। शशिचूला सुयोग्य कुमारी है।'

उसी समय सिद्धार्थ आ गये। लव ने खड़े होकर अभिवादन किया है। सीताजी ने प्रणाम किया। लवने उन्हें आसन दिया। सिद्धार्थ ने आशीर्वाद दिये। सीताजी ने उन्हें सम्बोधित कर कहा--

'हे महापुरुष, महराजा वज्रजंघ ने लव का विवाह करना निश्चित किया है। शशिचूला के साथ।'

'देवी महाराजा का निर्णय समुचित है। शशिचूला सुयोग्य

कुमारी है।' सीताजी विचारों में डूब गई थी। लव जमीन पर नजर रखकर बैठा था।

'देवी आप किस विचार में पड़ गई हैं ?

'देवर्षि, विचार क्या करूं' मन में विचार आते ही रहते हैं, लव के विवाह में इसके पिताजी नहीं हों लक्ष्मण नहीं हों......' सीताजी की आंखें डबडबा आयी।

'देवी, आप इन विचारों को त्याग दो। लव कुश को इनके पिताजी का मिलन स्वाभाविक ही होगा। अब अधिक विलम्ब नहीं है। अभी तो लव का विवाह महोत्सव सम्पन्न हो जाने दो।

उसी समय सिद्धार्थ को राजा वज्रजंघ का बुलावा आ गया। सिद्धार्थ खड़े हो गये सीताजी ने खड़ी होकर अभिवादन किया। लव महल के द्वार तक पहुँचाने गया। सिद्धार्थ ने लव को वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से देखा। लव लज्जित हो गये।

महाराजा ने सिद्धार्थ का स्वागत किया। विवाह के विषय में चर्चा की और विवाह महोत्सव का दिन निश्चित हुआ।

दिवस समीप आने पर महोत्सव प्रारंभ हुआ। भव्य समारोह के साथ शशिचूला एवं अन्य बत्तीस कुमारियों के साथ लव ने पाणिग्रहण किया। पुत्र वधुओं ने सीताजी के चरणों में प्रणाम किया।

---

१५ : कुमारों के लग्न

लव का विवाहोत्सव समाप्त हो जाने के बाद महाराजा वज्रजंघ ने कुश के लिए सुयोग्य एवं कुलीन कन्या की शोध प्रारम्भ की। उनकी दृष्टि में पृथ्वीपुर आया। मंत्रियों को पृथ्वीपुर भेजकर वहां के राजा पृथु की कन्या कनक मालिका की मांग की।

परन्तु राजा पृथु ने यह मांग अस्वीकार कर दी और कहा : 'जिसके वंश को नहीं जानते उसे अपनी पुत्री कैसे दी जा सकती है ?'

जब मन्त्रियों ने राजा वज्रजंघ को यह समाचार दिए, तब राजा को रोष आ गया, जब लव-कुश को यह बात मालूम हुई, तो वे भी रोष से तमतमा उठे। वज्रजंघ ने युद्ध की घोषणा करदी। राजा पृथु भी युद्ध के लिए तैयार था। लव और कुश को युद्ध में नहीं आने के लिए समझाया गया, परन्तु वे वीर कुमार क्यों रुकने लगे ? उन्होंने वज्रजंघ को कहा: 'हे ज्येष्ठ, पृथु को हमारे वंश का परिचय देने के लिए हमें ही जाने दो। हमारा और हमारे वंश का परिचय हम रण क्षेत्र में ही देंगे।'

दोनों कुमारों का दृढ़ आग्रह देखकर सीताजी ने विजय तिलक किया, और कुमारों ने राजा वज्रजंघ के साथ युद्ध प्रयाण किया।

राजा पृथु की सेना भी पृथ्वीपुर के बाह्य प्रदेशों में सुसज्जित होकर तैयार खड़ी थी। दोनों सेनाओं में तुमुल युद्ध प्रारम्भ हुआ।

पृथु की सेना ने वज्रजंघ की सेना को प्रहर में ही पराजित कर दिया। सैनिक चारों दिशाओं में भागने लगे। लव-कुश ने यह दृश्य देखा। अभी तक वे दोनों युद्ध के दर्शक ही बने हुए। सेना को पराजित देख कर दोनों कुमार युद्ध में कूद पड़े।

अपूर्व युद्ध कौशल और अद्भुत वीरता से उन्होंने सेना में चैतन्य संचार कर दिया। भागते हुए सैनिक रुक गये, और दोनों कुमारों की युद्ध प्रवीणता पर मुग्ध हो गये।

लव-कुश ने पराजय को विजय में परिवर्तित करदी। राजा पृथु भागने लगे। लव-कुश ने पृथु के सामने विजय स्मित करते हुए कहा:—

'राजन्, हमारा वंश तो आप जानते ही नहीं, तो फिर इस युद्ध में से आप भागने क्यों लगे? आप तो सुप्रसिद्ध कुल वंशोत्पन्न हैं।'

राजा पृथु ठहर गये, और लव-कुश के सामने नत मस्तक हो कर बोले—

आपके इस अद्भुत पराक्रम से ही आपका वंश मैंने जान लिया। महाराजा वज्रजंघ ने कुश के लिए मेरी कन्या की मांग सचमुच मेरे हित के लिए ही की थी।

ऐसा मुझे अनुभव हो रहा है। ऐसा वर ढूंढने पर भी नहीं मिल सकता। मैं अपनी कन्या कनक मालिका कुश को प्रदान करता हूँ।

उसी समय राजा वज्रजंघ का रथ आ पहुँचा। लव कुश रथ में से उतर कर उन्हें नमस्कार कर पास में खड़े हो गये। महाराजा ने दोनों को अपने बाहुपाश में जकड़ स्नेह वर्षा की।

'हे वीर कुमारो, आज तुमने ऐसा संग्राम किया है कि जिसे देखकर देवों को भी ईर्ष्या उत्पन्न हो जाय। तुमने अपने माता पिता के कुल को समुज्ज्वल कर दिया।'

उसी क्षण पृथु राजा भी पास आ गये और राजा वज्रजंघ को प्रणाम कर कहने लगे :—

हे महाराजा, मेरा अविनय क्षमा करो। दोनों कुमारों की अपूर्व वीरता से इनके वंश का परिचय हो गया......वीर कुमार को अपनी पुत्री कनक मालिका देता हूँ।

राजन, आपको धन्यवाद है पराजय के बाद भी सद्बुद्धि प्राप्त हो गयी है।

राजा प्रथु ने कनक मालिका का विवाहोत्सव प्रारंभ कर दिया और अनेक राजा महाराजाओं को निमंत्रित किया। महाराजा वज्रजंघ ने भी निमंत्रण प्रेषित किए।

भव्य समारोहपूर्वक कुश ने कनक मलिका का पाणिग्रहण किया। लग्नोत्सव के अनन्तर महाराजा वज्रजघ की अध्यक्षता में राज सभा का आयोजन किया गया। उसी समय आकाश मार्ग से नारद जी राज सभा में आ पहुँचे।

'पधारो, पधारो, देवर्षि।' महाराजा वज्रजंघ ने सिंहासन से उतर कर स्वागत किया।

'कुशलोभव राजन, नारद जी ने आशीर्वाद दिया। नारद जी को योग्य आसन दिया गया। राजाओं व राजकुमारों ने उन्हें प्रणाम किया।

देवर्षि आप यहां पधारे हैं। तो इन राजाओं की एक जिज्ञासा

को सतुष्ट करने की कृपा करें। राजा वज्रजंघ ने नारद जी के सामने भावपूर्वक (सूचक) दृष्टि डालते हुए कहा। राजा के पास ही राजकुमार लव और कुश बैठे हुए थे। उन्होंने भी नारद जी को अभिवादन दिया था। दोनों कुमारों ने पहली ही बार नारद जी के दर्शन किए थे। यद्यपि उनका परिचय तो पूर्व मे ही राजा वज्रजंघ से उनको दो बार प्राप्त हो चुका था। साथ ही अपने गुरु सिद्धार्थ से भी नारद जी के विषय मे परिचय मिला था। दोनों कुमार बार बार नारद की ओर देखते रहते थे, और नारद जी ने भी उनकी ओर दो चार बार दृष्टि डाली थी।

'कहिये राजन, इन राजाओं की क्या जिज्ञासा है? नारदजी ने पूछा:—

'देवर्षि आपके सामने बैठे हुए इन दो कुमारों के बारे में जानने की इच्छा है। आप स्वयं अपने श्री मुख से इनका परिचय देने की कृपा करें।'

नारद जी के मुख पर मुस्कान छा गई। उन्होने राजा पृथु एवं अन्य राजाओं की ओर दृष्टिपात किया. लव कुश के सामने भी देखा, दोनों ओर की दृष्टि का मिलन हुआ, और नारद जी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। दो क्षण पश्चात वे स्वस्थ हो कर बोले :—

'इन वीर कुमारो के वंश का परिचय जानना है? आश्चर्य है इन सुपुत्रों के वंश को कौन नहीं जानता? भगवान ऋषभदेव जिस वंश के आदि पुरुष है। इनके वंश में उत्पन्न भरत आदि चक्रवर्तियों को कौन नहीं जानता? और इन कुमारों के पिता श्री रामचन्द्र जी को कौन नही पहचानता?'

'ऐं? क्या ये कुमार श्रीराम के पुत्र हैं?' राजा पृथु और अन्य राजा लोग आश्चर्य से ...... हर्ष मे ...... आनन्द मे मानो नाच उठे।

हां राजेश्वरों, ये कुमार श्री राम के पुत्र हैं। श्री लक्ष्मण इनके काका हैं। श्री राम लक्ष्मण ही तो इस काल के वलदेव वासुदेव हैं, जिन्होंने लंकापति रावण को रण में मारा और समग्र विद्याधर वंश को अपने सामने झुका लिया :—

जव ये कुमार गर्भस्थ थे तव श्री राम ने सीताजी का त्याग किया था। सीताजी के लिए प्रजा में अफवाह फैली हुई थी....... यद्यपि यह केवल एक षडयंत्र ही था। परन्तु लोगों के कहने से श्रीराम ने सीताजी को जंगल में छोड दी।

लव की दृष्टि नीची थी। कुश की दृष्टि नारद जी पर लगी हुई थी। कुश के मुख पर रोष युक्त हास्य की झलक आ गयी। उसने कहा:—

'देवर्षि, श्रीराम ने उचित नहीं किया। माता वैदेही को दारुण वन में छोड़ देना, उनके समान व्यक्ति हेतु ही अनुचित कहा जाएगा। अपवाद ...... निन्दा.......आदि का निराकरण करने के लिए अन्य अनेक उपाय किए जा सकते थे। विद्वान और विवेकी राम ने यह अयोग्य कदम उठाया।

'कुमार, तुम्हारा कथन सत्य है? होना था सो हो गया। महा-पुरुष जव भूल करते है, तो उनको कौन समझा सकता है? तुम्हारे काका लक्ष्मण जी ने वहुत समझाया था। परन्तु वे तो समझे ही नहीं ....कर्मणां गतिरीदृशी।'

'ब्रह्मर्षि, अपने यश की रक्षा करने के लिए एक महासती के जीवन को नष्ट कर देना यह न्याय है क्या? हम जानते हैं कि पिताजी ने अपने यश की रक्षा के लिए ही हमारी जननी को वन्य पशुओं के सामने फैंक दी थी। परन्तु 'धर्मोरक्षित: रक्षिता:' धर्म की रक्षा करने वाले की रक्षा धर्म ही करता। हमारी माता के सतीत्व

न हो माता की रक्षा की हमारी रक्षा की ... और उस भीषण सिंह निनाद वन में महाराजा वज्रजंघ के समान परनारी-सहोदर मिल गये, और सुयोग्य आश्रय मिल गया, अन्यथा क्या होता, यह विचार ही कम्पा देने वाला है।'

अंकुश ने अपना हृदय खोल कर रख दिया। नारद ने ध्यान पूर्वक बात सुनी। तब लव बोला :--

'ब्रह्मर्षि आप यह बताइये कि वह नगर कितनी दूर है, जहां हमारे पिता अनुज लक्ष्मण के साथ विराजित हैं।'

'वत्स तुम्हारे विश्व श्रेष्ट पिता अयोध्या में विराजते है, यहाँ से यह प्रसिद्ध नगर एक सौ साठ योजन दूर है।' नारद जी ने लव के हृदय को समझने का प्रयत्न करने लगे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि लव का हृदय केवल अयोध्या जाना ही नहीं चाहता, बल्कि वैदेही के साथ हुए अन्याय का प्रतिकार चाहता है। माता के प्रतिक्रूर व्यवहार वाले पिता के प्रति उसके हृदय में रोष है।'

राज सभा विसर्जित हुई। सबों के मन और उनमें भी कनक मालिका का मन नाच उठा, उसकी माता की प्रसन्नता की तो सीमा ही नहीं रही। नगर की सैंकडों महिलाओं ने आकर कनक मलिका को अभिनन्दित किया। 'मैं श्री राम की पुत्र वधु बनी हूँ।' इस विचार ने उसके गौरव में अपूर्व वृद्धि कर दी।

लव और कुश भोजनादि से निवृत होकर राजा वज्रजंघ के पास पहुँचे। दोनों कुमारों को पास बिठाकर महाराजा ने वार्ता विनोद किया। वर्तालाप में अवसर देखकर लव ने वज्रजंघ को कहा : -

'हे तातपद् हम अयोध्या जाना चाहते हैं। श्री राम लक्ष्मण के दर्शन तो करें।' लव ने कुश की ओर देख कर सहमति ले ली।

'वत्स, तुम को जाना ही है, मैं भी चाहता हूँ कि तुम अपने विश्व विजयी पिता के दर्शन करो ......परन्तु .... वज्रजंघ रुक गये।

'आप बोले क्यों नहीं ? कुश ने आग्रह किया। वज्रजंघ के मुख पर दुःख, वेदना और रोष की संयुक्त भावना तैरने लगी। उन्होंने लव की दृष्टि में दृष्टि मिलाकर कहा:– 'हे कुमारो, अयोध्या जाना तो है ही; परन्तु एक शरणागत के रूप में नहीं......बराबरी करने वालों के रूप में ...... उसके लिए अपने को कितने ही देशों पर विजय करनी होगी ... एक विराट शक्ति जागृत करनी होगी...... उसके पश्चात् अयोध्या की ओर ...

'सत्य...... सत्य...... पिताजी आपका वक्तव्य यथार्थ है।' लव कुश बोल उठे।

राजा वज्रजंघ

राजा पृथु

और लव-कुश

दो राजा और उनके दो जामाता, इन चारों की सभा का आयोजन हुआ। महाराजा पृथु के महल के सभाकक्ष में ये चारों महा-पुरुष सम्मिलित हुए। महाराजा वज्रजंघ के मन में एक भव्य कल्पना थी। आज इस कल्पना को साकार करने की योजना थी। कल्पना और उसे साकार करने की योजना राजा पृथु को समझानी थी। उन्हें इस के लिए सहमत करना था, लव और कुश को उसके लिए उत्कंठित करना था। महाराजा वज्रजंघ ने पृथु के विरुद्ध किए गए युद्ध में लव कुश के अद्वितीय पराक्रम को मान लिया पुण्य प्रभाव रूप सूर्य को पूर्ण रूपेण प्रकाशित होता हुआ देख लिया था, उन्होंने लव कुश के द्वारा ही अपनी भव्य कल्पना को मूर्त रूप देना सोचा था। हाँ, इसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं था। वे तो लव कुश का उत्कर्ष

चाहते थे। और पृथु के समान स्वजन मिलने से वज्रजंघ के उत्साह में वृद्धि हो गयी थी।

उन्होंने कहाः—'हे कुमारो, हमें यहीं से ही अपनी विजय यात्रा आरम्भ कर देनी चाहिये। तुम्हारे द्वारा प्राप्त कला, ज्ञान और विज्ञान का प्रयोग करके देश विदेश पर विजय प्राप्त करना चाहिए। निष्क्रिय बनकर बैठे रहने से कला का प्रकाश मन्द हो जाता है। विज य यात्रा में मैं व पृथु भी साथ रहेंगे।

राजा पृथु बोले—'महाराजा का कथन सत्य है, विजय यात्रा में मैं साथ में हो रहूंगा। दिगन्त-व्यापिनी यश: कीर्ति प्राप्त करके दोनों कुमार विजय माला धारण करें—यही मेरी कामना है।' लव ने कहा : 'आप दोनों पूज्य स्थान पर हैं।' विजय यात्रा के लिए हम भी उत्कंठित हैं। आप विजय यात्रा का क्रम तैयार करें, शुभ दिन व मूहूर्त में प्रस्थान करें, परन्तु""" लव ने कुश के सामने सूचक दृष्टि डाली।

माताजी तो पुण्डरीकपुर हैं"""" 'उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये"""" कुश ने कहा। वज्रजंघ ने समझाया कि एक अश्वा-रोही पुण्डरीकपुर भेजकर वैदेही को सब वृतान्त कहलवा देंगे और उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर लेंगे।

महाराजा वज्रजंघ और पृथु ने विजय यात्रा का कार्यक्रम निश्चित कर लिया। लव और कुश भी कार्यक्रम देखकर प्रसन्न हुए।

महासती सीता का आशीर्वाद प्राप्त हो गया, विजय यात्रा का मुहूर्त निकाल लिया गया, और पूर्व तैयारियां भी पूर्ण हो गया।

---

१६ : दिग्विजय

महाराजा वज्रजंघ और महाराजा पृथु ने अपनी सेनाओं को सुव्यवस्थित कर लिया, और शुभ मूहर्त में विजय-प्रयाण किया। लव-कुश के उत्साह की तो सीमा ही नहीं रही।

मार्ग में जो छोटे-बड़े राज्य आए, उन्हें बड़ी सरलता से अपने अधीन कर लिया, कितने ही राजा स्वयं शरण में आये। शरणागत राजाओं को सेनाओं सहित लव-कुश ने विजय यात्रा में सम्मिलित कर लिया।

लोकपुर नगर आया। वहाँ का राजा कुबेरकांत अजेय माना जाता था। लव-कुश ने उसके पास दूत भेजा, और शरण में आ जाने को कहलवाया, परन्तु कुबेरकाँत इस प्रकार की शरणागति में कैसे आ सकता था? वह युद्ध के लिए तैयार हुआ। लव-कुश ने एक प्रहर में ही उसे पराजित कर लोकपुर में अपनी आज्ञा प्रवर्तित कर दी।

कुबेरकान्त लव कुश के अपूर्व पराक्रम को देखकर मुग्ध हो गया। उन्होंने उसे भी अपने साथ ले लिया।

लंपाक देश के एक कर्ण राजा को पराजित किया और विजय स्थली के भातृकांत राजा को भी जीत लिया। आगे बढ़ ····· और

पवित्र गंगा सामने दिखाई दी। गंगा के उस पार हिमालय के उत्तुंग हिमधवल शिखा (दृष्टि में आये)

लवकुश ने गंगा तट पर राजाओं के साथ मंत्रणा की। गंगा पार के देशों के विषय में जानकारी प्राप्त की। और उन देशों तक विजय यात्रा चालू रखने का निश्चय किया। सैन्य को आदेश दे दिया, नौकाएं तैयार होने लगी। और थोड़े ही दिनों में सैन्य गंगा नदी पार करके दूसरे किनारे पहुँच गया।

कैलाश की उत्तर दिशा में प्रयाण प्रारंभ किया गया।

रुस, कुन्तल, कालाम्बु नन्दी, नन्दन, सिंहल, आदि देशों पर विजय-पताका फहरा कर लवकुश ने सिन्धु नदी पार की। सिन्धु पार आर्य अनार्य के देशों को जीत लिया, और पुण्डरीकपुर की ओर प्रस्थान किया।

लव-कुश राजाओं के राजा बन गये। एक विशाल साम्राज्य के स्वामी बनकर वे पुण्डरीकपुर आ रहे थे। माता जानकी कितनी प्रसन्न होवेंगी ……इसकी कल्पना ही दोनों भाईयो को हर्ष से गद्‌गद् कर देती थी।

महाराजा वज्रजंघ ने दूत को पुण्डरीकपुर भेज मंत्रि वर्ग को संदेश पहुंचवा दिया। महासती सीता को भी वृतान्त मिला। सीता जी अपने प्राण प्रिय पुत्रों को देखने हेतु उत्कंठित हो उठी। मंत्रियों ने पूरे नगर को अलंकृत कर दिया। नगरजनों ने उत्सव का वातावरण बना दिया। अनेक राज-राजाओं के साथ विजय-यात्रा पूर्ण कर आने वाले लवकुश का भव्य स्वागत के लिये लाखों देशवासी पुण्डरीकपुर पहुँचे।

मंत्रि-वर्ग ने नगर प्रवेश का अद्‌भुत आयोजन किया था। सबसे आगे गगनचुम्बी विजय ध्वज को वहन करते हुए श्वेत अश्व

चल रहे थे। उनके पीछे सुन्दर वेश में सुसज्जित वादक वृन्द विविध प्रकार का वाद्य बजाता हुआ चल रहा था। तत्पश्चात् अलंकारों से सज्ज एक सौ आठ हाथी दो-दो की पंक्ति में झूमते हुए चल रहे थे। हाथियों के पीछे नर्तक मंडली थी, उसके पीछे विशाल रथ में महाराजा वज्रजंघ आरुढ़ थे। महाराजा के पीछे एक अत्यन्त सुशोभित रथ में लवकुश विराजित थे। उनके पीछे महाराजा पृथु का रथ था। तत्पश्चात चार-चार की पंक्ति में अन्य (अज्ञानुवर्ती) राजा चल रहे थे। राजाओं के पीछे सेना के पराक्रमी विजयी सेनापति अश्वारूढ़ होकर प्रसन्नमुद्रा में चल रहे थे। सबके पीछे विजयोन्मत्त सैनिक अपूर्व हर्ष से राजमार्गों पर धमधमाते हुए चल रहे थे।

नगर के अग्रगण्य पुरुषों ने महाराजा वज्रजंघ और लवकुश का स्नेह सिक्त स्वागत किया। राजमार्गों पर लाखों स्त्री-पुरुषों ने अक्षत, पुष्प, गुलाल की वृष्टि करके स्वागत किया।

'अहो ! धन्य है महाराजा वज्रजंघ को, जिनके ऐसे दिग्विजय लवकुश भाणेज हैं। धन्य है देवी सीता को ...... जिन्होंने ऐसे देव-कुमारों को जन्म दिया।' स्थान-स्थान पर लोगों के मुख से प्रशंसा, पुष्पों की वृष्टि होने लगा।

स्थान–२ पर कुमारों का जय-जयकार होने लगा।

पुण्डरीकपुर हर्षोन्मत्त हो गया था। लव एवं कुश का पुण्योदय १६ कलाओं सहित विकसित हो गया था। राज परिवार में आनन्द छा गया था। यह सब देख कर, सुनकर सीताजी निःसम आनन्द का अनुभव कर रही थी। उसी समय स्वागत सभा से निवृत होकर लवकुश आ गये और उनके चरणों में अपने मस्तक झुका दिये ... सीताजी ने दोनों पुत्रों के मस्तक को हर्षाश्रुओं से अभिषेक किया और बारम्बार उनका आलिंगन करने लगी।

'मेरे प्रिय पुत्रों, तुम राम लक्ष्मण के समान बनो । दोनों के सिर पर हाथ रखकर सीताजी ने आशीर्वाद दिया ।

'विश्वपावनी माता, तेरे आशीर्वाद से हम राम-लक्ष्मण के तुल्य ही नहीं, राम लक्ष्मण के भी विजेता बनेंगे ।' लव ने सीताजी की नजर में नजर मिला कर कहा ।

उसी समय कलाचार्य सिद्धार्थ आ गये । दोनों कुमारों ने खड़े होकर स्वागत किया । और बैठने के लिए आसन बिछाया । सिद्धार्थ ने दोनों शिष्यों को आशीर्वाद दिया और बोले :

'प्रियकुमारों अब तुम कुमार नहीं रहे, राजेश्वर बन गये हो भव्य विजय प्राप्त करके आये हो, परन्तु मैं तो तुमको कुमार ही कहूँगा : तुम धन्य हो गये और हम सब को भी धन्य कर दिया है ''' अपूर्व विजय प्राप्त कर तुमने धवल कीर्ति प्राप्त की है ।

'गुरुदेव, यह सब आपका ही प्रभाव है । इस जननी के आशीर्वाद का फल है । और मामा वज्रजंघ के अद्भुत वात्सल्य का परिणाम है''''' '' कुश ने कृतज्ञता व्यक्त की ।

उसी समय द्वारपाल ने आकर नमन कर निवेदन किया :

'माताजी, महाराजा वज्रजंघ और महाराजा पृथु आपके दर्शनार्थ पधारे हैं ।'

तुरन्त लवकुश और सिद्धार्थ महल के द्वार पर गये और दोनों का स्वागत कर अन्दर ले आये । दोनों राजाओं ने सीताजी को अभिनन्दन किया और सीताजी ने प्रतिवंदन कर सुयोग्य आसनों पर बैठाया ।

'सीते ! महाराजा वज्रजंघ बोले ।

'जी ……'

'ये हैं महाराजा पृथु । इनकी सुपुत्री तेरी पुत्र वधू है।' कनक मालिका सीताजी के पीछे आकर खड़ी हो गयी थी। तुरन्त ही उसने सीताजी के चरणों में प्रणाम किया।

'यह मदनांकुश की धर्म-पत्नी है। वज्रजंघ ने विशेष स्पष्टता की। सीताजी ने पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया। उनके हृदय को सन्तोष हुआ।

'सचमुच, महासतीजी, आपने पुत्र रत्नों को जन्म दिया है,

दूसरे राम-लक्ष्मण ही हैं। विजय यात्रा में इन दोनों महापुरुषों के गुण और पराक्रम …… मैंने प्रत्यक्ष देखे …… मेरा हृदय हर्ष से गद्-गद् हो गया है …… मेरा पुण्योदय है कि मुझे ऐसे जामात मिले……' महाराज पृथु ने कहा। उनकी आंखें हर्षाश्रुओं से छलछला गई थी। वज्रजंघ भी आंखें पोंछ रहे थे।

राजन्, यह सब प्रताप अरिहन्त भगवान का है, महाराज वज्रजंघ के समान धर्म बन्धु का है, और महर्षि सिद्धार्थ कलाचार्य का है।' सीताजी ने हर्ष से गदगदित स्वर में कहा।

'और हमारी इस महासती जननी का है ……' लवकुश एक साथ बोल उठे। महाराज वज्रजंघ ने लव के कान में कहा: अन्य राजा लोग महासती के दर्शन करना चाहते हैं, उन्हें बुलाऊं? तब सीताजी के पास जाकर उनके दोनों हाथ अपने हाथ मिलकर बोला-'मां, हम जिन राजाओं को जीत कर आए हैं, वे राजा हमारी सती माता के दर्शन करना चाहते हैं। वे आ रहे हैं ……'.

लव ने वज्रजंघ को संकेत किया। तुरन्त महल के अन्य खंड में बैठे हुए राजाओं को बुलवाया गया। सबों ने महासती के दर्शन

किए। सीताजी ने सबों का आशीर्वाद दिया और वे अपने खंड में चली गई।

सीताजी के जीवन में हर्ष का यह दूसरा अवसर था। पहला था लंका से जब अयोघ्या आई तब, और दूसरा यह। उस दिन वे स्वयं पुत्र वधू थी और कौशल्याजी सास। आज सीताजी स्वयं सासू हैं।

पुत्र वधुओं को कोई कष्ट नहीं हो, किसी प्रकार की असुविधा न हो, इसके लिये सीताजी स्वयं ध्यान रखने लगी। पुत्र वधुओं को उनकी ओर से अत्यन्त स्नेह और वात्सल्य प्राप्त होता था और यही स्नेह और वात्सल्य प्रेम में परिणित होकर लव कुश को मिलने लगा।

सीताजी के अन्धकारपूर्ण बने हुए जीवन में पुनः प्रकाश फैल गया...... एक बिल्कुल नई परिवार सृष्टि में विचारने लगी। पुत्रों एवं पुत्र वधुओं की ओर से उन्हें स्नेह और सम्मान आदि प्राप्त होता था।

जीवन अर्थात् धूप और छाया।
जीवन अर्थात् विष और अमृत।

परन्तु छाया थोड़े समय.... अधिक समय तो जलती हुई धुप ? अमृत तो थोड़ा बाकी तो हलाहल विष के प्याले ! ऐसे जीवन पर राग क्या करना......? और स्नेह क्या करना ......? जीवन मुक्त बनना यही सत्य है। आत्म रमण में ही परम शांति और परमानन्द का अनुभव होता है।

दिन बीते महीने बीत गये।
रंग-राग और भोग-विलास में समय निकल जाता है......

मालूम नहीं पड़ता। एक दिन सीताजी सिद्धार्थ को कह रही थी : 'मेरे पुत्र साक्षात् राम-लक्ष्मण हैं।' ये शब्द कुश ने सुनें। उन्हें राम की याद आई······'मेरी निर्दोष माता को लोगों के कहने मात्र से जंगल में छोड दी······' यह विचार आया, साथ ही रोष भी आ गया। वह तुरन्त लव के पास पहुँचा।

'लव अयोध्या कब चलना हैं ? लव कुश के सामने देखता रहा। मौन रहा।

'राम लक्ष्मण से मिलना नहीं है ? देखना नहीं है? कुश के स्वर में रोष था।

'अपन मामा को मिलें, लव बोला।

'चलो अभी।' कुश लश को लेकर मामा वज्रजंघ के पास पहुँचा। वज्रजंघ को प्रणाम कर दोनों भाई विनय-पूर्वक बैठ गये। औपचारिक वार्तालाप के बाद लव बोला :

'मामा आपने हमें अयोध्या जाने की सम्मति दी थी याद है ?'

'हाँ मैंने सम्मति दी थी।'

'तो हमें आज्ञा दीजिए। महाराज पृथु को संदेश भेज दो। लंपाक, रूस, कालाम्बु कुन्तल आदि देशों के राजाओं को युद्ध प्रयाण के लिये आज्ञा प्रदान करो। युद्ध प्रयाण के बाजे बजवाओ······हम हमारी माता के प्रति अन्याय करने वाले का पराक्रम तो देखें।

'महाराजा वज्रजंघ ने कहा : हे कुमारों, तुम अपनी माता की अनुमति प्राप्त करो। मैं तो अपनी अनुमति दे चुका हूँ।

'आप साथ ही चलें······माता की सम्मति प्राप्त करनी ही चाहिये······'लव ने कहा : दोनों कुमार और वज्रजंघ सीताजी के

के महल में आए। सीताजी ने महाराज का स्वागत किया। महाराज बोले : 'देवी, कुमार अयोध्या जाने को कहते हैं '

'नहीं, यों ही नहीं, विशाल सैन्य के साथ जाना है…पिताजी का पराक्रम देखना है… ' कुश कुछ रोषपूर्ण स्वर में बोल उठा। सीताजी की आँखें आसुओं से भर आईं, वे बोली :

'नहीं, कुमारों तुम युद्ध का विचार मत करो, पिताजी के साथ युद्ध हो ही नही सकता… तुम्हें ऐसी अनर्थकारी इच्छा क्यों हुई ? तुम्हारे कैसे कर्म जागे ? सीताजी गद्गद् हो गयी। वे बोली

'तुम्हारे पिता और काका देवों के लिये भी दुर्जेय हैं। जिन्होंने रावण के समान त्रैलोक्य वीर मारा है। उनके साथ युद्ध ! नहीं, नहीं, मैं सम्मति नहीं दूंगी।

'माता, तैंने तेरे पुत्रों का पराक्रम कहाँ देखा है।

राक्षसपति रावण का वध करने वाले पिताजी और काका लक्ष्मण के सामन भी तेरे कुमारों को अपना पराक्रम प्रदर्शन करने दे।

'नहीं, नहीं, वत्स, तुम्हें राम लक्ष्मण के दर्शन करने की उत्कण्ठा है, तो तुम विनीत बन कर जाओ। पूज्य ही विनयोऽर्हति, पूज्य पुरुषों के समक्ष विनय ही शोभा देता है।

'विनय ? किसका ? श्रीराम का विनय हो ही कैसे सकता है ? शत्रु का विनय ? जिसने हमारी माता के प्रति अन्याय किया है, वह हमारा शत्रु है। भले ही वह पिता हो, काका हो कोई भी हो। उसका हम विनय किस प्रकार करें। यह हो ही नही सकता। कुश गरज उठा।

'नहीं, नहीं, पुत्रों ! तुम्हारे पिताजी का कोई दोष ही नहीं है ····· जहां मेरे ही कर्म वक्र हों, वहां वे क्या कर सकते हैं ? सीता की आंखों से अश्रुधारा बह निकली ।

तो क्या हम वहां जाकर यह कहें कि 'हम आपके पुत्र हैं····? ऐसा कहकर वहाँ जाकर खड़े रहना उनके लिए लज्जास्पद नहीं होगा । इसलिए हे माता, तू हमको मत रोक । युद्ध का आव्हान ही हमारे पराक्रमी पिता को आनन्ददायो होगा । यही दोनों पक्षों की कीर्ति बढ़ायेगा । तू चिन्ता मत कर ।'

लव ने माता के मन का समाधान करने का प्रयत्न किया । सीताजी का मन जरा भी मानने को नहीं था । 'पुत्र पिता के सामने युद्ध पर चढ़े । कदाचित अनर्थ हो जाए तो ?' सीताजी का हृदय घोर पीड़ा से व्यथित हो उठा ।

लव और कुश ने सीताजी को प्रणाम किया और तेजी से महल की सीढ़ियाँ उतर गए । सीताजी लव···कुश लव कुश बोलती हुई मूर्छित हो गई । तुरन्त ही पुत्र वधुओ ने शीतोपचार किया । मूर्छा दूर हुई । महाराजा वज्रजघ ने सोताजी को आश्वासन देते हुए कहा–

'देवी, तू चिन्ता मत कर । मै और महाराजा पृथु युद्ध में साथ जाएगें । तेरे लाड़लों को जरा भी आँच नहीं आने देग । अब कुमारों को रोका नहीं जा सकता ·······'

महाराजा पृथ पुण्डरीक पुर आ गये थे । अन्य राजाओं को अयोध्या की ओर युद्ध प्रयाण का आदेश दे दिया गया···· कूतूहल विस्मय और भय से भरी दृष्टि से अनेक राजा लव और कुश के

[illegible]

[illegible]

[illegible] किया।



१७ : अयोध्या के मार्ग पर

नारद जी पर्यटन करते हुए रथनुपुर नगर जा पहुँचे। महाराजा भामण्डल ने यथोचित सत्कार कर कुशल क्षेम पूछी।

'देवर्षि, अभी किस ओर से पधारना हुआ? कोई आश्चर्य जनक घटना? भामण्डल ने पूछा।'

'भामण्डल, आर्य भूमि में पर्यटन चालू ही रहता है। ऐसी कोई आश्चर्य जनक घटना तो इन दिनों देखी नहीं, परन्तु पृथ्वीपुर नगर में तेरे दो भानजों ने महाराजा पृथु की बुद्धि ठिकाने ला दी।'

नारद जी के मुख पर हास्य छा गया।

'मेरे भानजे? पृथ्वीपुर नगर में? राजा पृथु की बुद्धि? कुछ समझ में नहीं आया। भामण्डल ने कहा।'

'हां, तेरे दो भानजे। देवी सीता के सुपुत्र लव और कुश। क्या तू नहीं जानता कि देवी सीता को, लोकनिन्दा से राम ने जंगल में छोड़ दी थी? बाद में राजा वज्रजंघ उन्हें धर्म भगिनी बनाकर अपने नगर ले आए। देवी गर्भवती थी ...... पुण्डरीकपुर में उन्होंने दो पुत्रों को जन्म दिया ..... बड़े पुत्र लव को तो वज्रजंघ ने अपनी कन्या से पाणिग्रहण करवाया। और कुश के लिए पृथ्वीपुर के राजा की कन्या की याचना की...... परन्तु पृथु ने कहा:—जिस कुमार के

कुल और वंश हमें मालूम नहीं उसे कन्या कैसे दी जा सकती है ? उससे वज्रजंघ को रोष आ गया । उन्होंने युद्ध किया । जिसमें लव-कुश ने अपूर्व पराक्रम प्रदर्शित किया । और राजा पृथु को पराजित कर दिया ·······

पृथु ने अपनी कन्या का विवाह कुश के साथ कर दिया । और उसके बाद राज सभा हुई, उसमें मैं भी अचानक पहुँच गया । मैंने वहाँ पर लव-कुश के वंश का परिचय दिया था । तब सभी अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे ।

भामण्डल नारद जी की बात सुनकर स्तब्ध हो गये । क्योंकि उनको ये सारी बातें मालूम नहीं थी । उनका दिल शोक, उद्वेग, और संताप से भर गया था ।

'देवर्षि, आपने यह क्या कहा ? सर्वथा सत्य ?'

'भामण्डल, मुझे आश्चर्य होता है कि तू कई वर्षों से देवी सीता को मिला ही नहीं । जा पुण्डरीकपुर में सीताजी मिलेगी, वहां मेरी बात की सच्चाई विदित हो जायेगी ।

भामण्डल तनिक भी विलम्ब किए बिना विमान में बैठकर पुण्डरीकपुर में नारदजी के साथ आए । वे दोनों वज्रजंघ के महल में में पहुँचे, वहां पता चला कि महाराजा युद्ध यात्रा पर हैं । वहां से सीधे सीताजी के महल में पहुँचे । परिचारिका से कहा कि सीता से कह कि भामण्डल आया है ।

परिचारिका तेजी से सीताजी के पास पहुँची । सीताजी पलंग पर सोई थी, आस-पास पुत्र वधुएँ बैठी थी ।

'महादेवी जी ! बाहर एक तेजस्वी राजपुरुष आये हैं, वे अपना नाम भामण्डल बताते हैं,और आपसे मिलना चाहते हैं ।

'भामण्डल, भाई भामण्डल आज यहां ? पुत्र वधुओं को कहा-भामण्डल मेरे भाई हैं। वे शीघ्र ही महल के द्वार पर आ गई ....'
भामण्डल को देखते ही सीताजी की आंखें डबडबा गयी। भामण्डल ने सीताजी के चरणों में प्रणाम किया। सीताजी ने नारद का स्वागत किया, और दोनों को महल में लेजा कर योग्य आसनों पर बिठाया। स्नानादि व भोजन से निवृत होकर भामण्डल ने सीताजी से कहा :—

'देवी लव कुश कहां हैं ?'

'अयोध्या गये हैं।'

'अयोध्या ! क्यों ? किसके साथ ?'

'इनके पिताजी और काका से मिलने गये हैं। लाखों सुभटों के साथ गए हैं। सीताजी का स्वर गद्‌गद्‌ हो गया।'

अर्थात्‌ ? भामण्डल को अशुभ की आशंका हुई।

'भाई, तेरे भानजों का बल पराक्रम अद्‌भुत है। उन्हें आर्यपुत्र के प्रति रोष चढ गया है ....पिता के विरुद्ध पुत्र युद्ध करेंगे। यद्यपि महाराजा वज्रजंघ और महाराजा पृथु साथ गए हैं, इसलिए वे कोई अनर्थ नहीं होने देंगे .. परन्तु आर्यपुत्र और लक्ष्मण को तो तू जानता है ... और उन्हें क्या मालूम है कि ये पुत्र किससे हैं ? कदाचित कोई अनर्थ ..'

सीताजी जोर-जोर से रोने लगी। भामण्डल ने आश्वासन दिया। रोते रोते सीताजी ने अपना सब वृतान्त कह सुनाया। भामण्डल का हृदय द्रवीभूत हो गया। वे बोले :—

'सीते, श्रीराम ने जल्दी में एक अकार्य तो कर डाला, अब पुत्र वध का दूसरा अकार्य न कर डालें। इसलिये तू उठ, तनिक भी

विलम्ब किए विना अपन युद्ध शिविर में जावें।

नारद जी वोले : भामण्डल का कथन यथार्थ है। तुम दोनों को अभी ही जाना उचित है। तुम जाओ। मैं भी अवसर पर आ पहुँचुगा।' नारद जी वहाँ से रवाना हो गये। सीताजी तैयार हुई। पुत्र वधुओं को आवश्यक सूचनाएँ देकर के विमान में वैठ गई। भामण्डल ने विमान को आकाश में ऊँचा चढ़ाया।

अयोध्या के बाह्य भाग में विशाल सैन्य का शिविर लगा हुआ था। लाखों सुभट लाखों हाथी" शिविर एक विशाल नगर सा लग रहा था। भामण्डल ने विमान को लव के शिविर में ही उतारा। अचानक आकाश में से विमान को उतरता देख सनिक सतर्क हो गये। शस्त्र सज्ज हो आये। जैसे ही विमान उतरा उसके चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये। लव-कुश को समाचार मिलने पर वे भी दौड़े आये। वहां विमान में सीताजी को देखा, शस्त्र फेंक कर माता के चरणों में नमन किया। सीताजी ने वहीं भामण्डल का परिचय दिया।

'पुत्रो! ये तुम्हारे मामा हैं। कुमारों ने भामण्डल को प्रणाम किया। सनिको ने भी अनुकरण किया।'

सीताजी और भामण्डल को लेकर लव-कुश अपने निवास पर आये। वहां पहुँचते ही भामण्डल ने लव-कुश को अपने बाहुपाश में जकड़ लिया और बारम्बार दोनों भानजो के मस्तक का आलिंगन कर स्नेहवर्षा की। स्नेह सिक्त, वात्सल्य पूर्ण शब्दों में भामण्डल ने सीताजी से कहा:—

'सीते तू सचमुच पुण्यशालिनी है। तू वीर पत्नी है ही, आज तू वीर माता भी वन गई। और तू मेरी वहन है।' तत् पश्चात लव-कुश के सामने देख कर बोले ;—

'हे प्रिय कुमारों, तुम्हें देख कर मैं अत्यन्त हर्षोल्लिसित हुआ हूँ। तुम वीर पुरुष हो, और वीर हो ! परन्तु तुम श्रीराम और लक्ष्मण के विरुद्ध युद्ध पर मत चढ़ो ··· तुम जानते नहीं हो, इन दो परम पराक्रमियों की शक्ति, मैंने तो रावण के विरुद्ध किए गए युद्ध में इनकी रण चातुरी और वीरता प्रत्यक्ष देखी है। रावण जैसा रावण मारा गया·······तुमने जल्दी में ही युद्ध का निर्णय कर लिया, लगता है··· ····'

'स्नेह भीरुता लाता है। आप हमारे प्रति आपके स्नेह से प्रेरित होकर बोल रहे हैं। पहले आपकी भगिनी और जननी भी ऐसा ही कहती थी। परन्तु अब युद्ध का त्याग करके······ इन शत्रु समान पिताजीं की शरण लेना उनके लिए भी लज्जास्पद बात होगी। लव ने भामण्डल से कहा।

एक तरफ नारद जी का भामंडल के,पास जाना था। भामंडल का सीताजी के पास जाना और उन्हें लेकर सैन्य शिविर में आना ·······हो रहे थे. तब दूसरी तरफ अयोध्या में आश्चर्य कुतूहल और रोष उत्पन्न हो रहे थे।

जब लव कुश के विशाल सैन्य ने अयोध्या को चारों ओर से घेरली। और ये समाचार राम लक्ष्मण को मिले, तब ऐसा कौनसा बड़ा शत्रु पैदा हुआ है।' यह बात उनके समझ में नहीं आई। दोनों को विस्मय हुआ, दोनों को क्रोध आया। गुप्तचर भेजे। वे वृतांत सुनकर वापस आए और बोले।

'महाराज, लाखों सुभटों की सेना ने शहर को घेर लिया है। ऐसी विशाल सेना के अधिपति दो कुमार हैं··· लवण और अंकुश। लोग उनके लव और कुश के प्यार भरे नाम से पुकारते हैं। इस सेना में करीब दस हजार राजा इन दोनों कुमारों की सेवा करते हैं।

गुप्तचरों के वृतान्त से राम-लक्ष्मण तर्क-वितर्क में पड़ गये 'कौन होंगे ये लवण और अंकुश ? इन शत्रुओं का नाम भी सुनने में नहीं आया। उसी समय लक्ष्मण गरज कर बोल उठे--

भले ही, वे कोई भी हों, ये पतंगियें आर्य-पुत्र की पराक्रम अग्नि में जल कर भस्म हो जायेंगें। युद्ध की तैयारी करें। सेनापति कृतान्त वदन को लक्ष्मण जी ने आज्ञा दी।

ये महापुरुष जानते ही नहीं हैं कि वे किसके साथ युद्ध करने जा रहे हैं। यह बात भी वे नहीं जानते हैं कि अयोध्या की सीमा में सीता एक सैन्य शिवर में बैठी है।

अयोध्या में युद्ध-भेरी बज उठी। लाखों सुभट युद्ध के लिए तैयार हुए। सुग्रीव और विभीषण भी अयोध्या में ही थे। वे भी शस्त्र सज्ज होकर चलने लगे। नगर के द्वार खुल गए। राम की सेना हर्षनाद करती हुई बाहर निकली। दोनों सेनाएं आमने-सामने जम गयी।

आदेश मिलते ही युद्ध प्रारम्भ हो गया। सुग्रीव, विभीषण आदि विद्याधर आकाश मार्ग से युद्ध करने लगे और भूमि सेना का विनाश करने लगे। लव-कुश की सेना में आकाश युद्ध करने वाले विद्याधर नहीं थे। तब भामण्डल ने सोचा सुग्रीव आदि विद्याधर भूमि सेना का नाश करेंगे। अतएव मुझे युद्ध में उतरना पड़ेगा।' सीताजी को शिविर में रखकर भामण्डल लव-कुश के पक्ष में आकाश युद्ध करने लगा।

घनघोर युद्ध होने लगा।

लव के रथ के सारथी महाराजा वज्रजंघ थे. और कुश के रथ के महाराजा पृथु। लव ने वज्रजंघ को कहा:--पहले आप मुझे राम

सैन्य के बीच में ले जाओ। वज्रजंघ ने रथ राम सैन्य के बीच में दौड़ा दिया। लव के पीछे कुश का रथ भी दौड़ आया। दोनों भाईयों ने तीक्ष्ण बाण वर्षा से सैन्य में हाहाकार मचा दिया।

सुग्रीव ने भामण्डल को देखा...... उसे आश्चर्य हुआ। राम भक्त भामण्डल शत्रु पक्ष में क्यों ? सुग्रीव उनके पास गया और पूछा:—

'भामण्डल, ये दो तेजस्वी कुमार कौन हैं ?

'श्रीराम के सुपुत्र ।'

'ऐं, सत्य ?'

'नितान्त सत्य,' देवी सीता भी शिविर में ही है।

'ऐसा सुग्रीव के आनन्द की सीमा ही नहीं रही। वह विभिषण के पास गया और सब बात कही। दोनों राजा युद्ध क्षेत्र छोड़कर भामण्डल के साथ लव-कुश के शिवर में गये, जहां देवी सीता थी।

दोनों ने हर्ष से रोमांचित हो सीता को प्रणाम किया, और उनके सामने भूमि पर बैठ गये।

'भामण्डल लव कुश कुशल तो है न ?' सीताजी ने उत्कंठित होकर पूछा।

'उत्तेजित सिंह के समान वे सैन्य पर टूट पड़ते हैं। सेना में हाहाकार मचा दिया है.......'

'श्रीराम को इनका परिचय.... '

'नहीं, परिचय नहीं देना है ..... कुमारों का पराक्रम ही परिचय देगा।' सुग्रीव बोला :—

'परन्तु यदि लक्ष्मण जी.......

'सामने भी लक्ष्मण जी हैं देवी। चिन्ता मत करो।' सुग्रीव ने सीताजी को ढ़ांढ़स बँधाते हुए कहा :--

सुग्रीव, भामण्डल और विभीषण युद्ध के प्रेक्षक बन गए। लव और कुश का युद्ध कौशल पराक्रम और युद्धोत्साह देखकर आश्चर्य चकित रह गये।

राम सैन्य में हाहाकार मच गया। सैनिक चारों दिशाओं में भागने लगे। लव और कुश के रथ अब श्रीराम और लक्ष्मण की ओर बढ़ रहे थे।



१९ : हर्ष और विषाद

श्री राम और लक्ष्मण ने लव और कुश को देखा। लव और कुश को निर्निमेष दृष्टि से देख कर श्रीराम ने लक्ष्मण को कहा—'लक्ष्मण ये सुन्दर कुमार, अपने शत्रु कौन हैं ? सच कहूं, तो मन स्वाभाविक रूप से इनको चाहने लगा है…… कैसा मनोहर रूप है दोनों का। दिल में ऐसा होता है कि कूद कर तथा इनके रथ में जाकर इन्हें आलिंगन कर लूं। इनके सामने युद्ध किस प्रकार हो सकता है ?'

श्रीराम लक्ष्मण को इस प्रकार कह ही रहे थे कि लव का रथ उनके सामने आकर खड़ा हो गया। कुश का रथ लक्ष्मणजी के सामने आकर खड़ा हो गया। दोनों कुमारों ने अपने पिता और काका को अपनी आखों से देखा … हृदय आनन्दित हुआ। लव ने शिष्ट भाषा में राम से कहा—

'हे अजय पुरुष ! रावण जैसे रावण का भी वध करने वाले पराक्रमी पुरुष …… बहुत समय से आपको देखने की इच्छा फलीभूत हुई है…… वीर युद्ध की मेरी कामना आज फलवती हुई है।' रावण के साथ युद्ध में भी आपकी 'वीरयुद्ध' की कामना सफल नहीं हुई, तो मैं पूर्ण करूंगा। आप मेरी इच्छा पूर्ण करना।

लव के वचन सुनते ही राम लक्ष्मण ने धनुषटंकार करके रण

क्षेत्र को कंपा दिया। इनके विरुद्ध लव-कुश ने भी पृथ्वी को कंपा देने वाला धनुपटंकार किया।

श्रीराम के रथ का संचालन कृतान्त वदन व लव के रथ का संचालन महाराजा वज्रजंघ कर रहे थे। लक्ष्मण जी के रथ को विराध चला रहा था और कुश के रथ को राजा पृथु चला रहे थे। दोनों पक्ष में कुशल, अनुभवी और युद्ध विशारद सारथी थे।

श्रीराम और लव का भीषण युद्ध होने लगा। चारों दिशाओं में रथ घूमते रहते थे। और दोनों रणवीर चपलता से शस्त्र प्रहार कर एक दूसरे को पराजित करने की कोशिश में थे। लव जानता था कि सामने पिताजी हैं। श्रीराम जानते नहीं थे कि मेरे सामने मेरा ही पुत्र है। लव सावधानी पूर्वक युद्ध करता था। श्रीराम शत्रु को नष्ट करने के लिए कटिबद्ध थे। दूसरी ओर लक्ष्मण जी को कुश परेशान कर रहा था। विराध एवं पृथ रथ-संचालन में कशल थे। कुश अपनी सर्वकलाओं को प्रदर्शित करता हुआ देवों द्वारा भी दर्शनीय युद्ध कर रहा था।

अनेक शस्त्रों से श्रीराम ने युद्ध किया ...... परन्तु वे रक्षात्मक युद्ध करते थे। हृदय में शत्रुनाश करने का उत्साह नहीं था। उल्लास नहीं था। उन्होंने कृतान्त वदन को कहा--

'इस प्रकार युद्ध कहाँ तक लम्बा करना हैं? तू रथ को शत्रु के साथ लगाले। मैं शत्रु को जीवित ही पकड़ लेता हूँ।'

'महाराजा अश्व थक गए हैं। शत्रु ने अश्वों को जर्जरित कर दिया है। अंग-अंग में तीर घुस गए हैं...... इनको चाबुक मारने पर भी आगे नहीं बढते हैं। अरे यह रथ भी शत्रु प्रहार से टूटने जैसा हो गया है...... और मेरी दोनों भुजाओं को तो देखो आप ...... मैं अश्वों की लगाम पकड़ने में भी समर्थ नहीं रहा और चाबुक भी नहीं

चला सकता ···महाराजा शत्रु तरुण हैं, परन्तु पराक्रम में वरुण को भी पराजित कर दें, ऐसा है·····'

'कृतान्तवदन, मेरे हाथों से भी धनुष मानो गिर रहा है ···· मेरे हाथ बहुत शिथिल हो गये हैं । यह 'वज्रावर्त' धनुष तो इन शत्रु के सामने काम ही नहीं करता । शत्रु को समूल शक्ति नाश कर देने वाला यह शक्तिशाली 'मुसलरत्न' भी केवल शरीर को खुजलाने का ही काम का रह गया है। और मेरा 'हल-रत्न' नामक शस्त्र जिसे देख कर बड़े-२ शत्रु दूर भाग जाते हैं, केवल खेत जोतने का हल ही बन गया है। मुझे समझ में नहीं आता कि शत्रु का संहार कर देने वाले, सदैव यक्षों से अधिष्ठित मेरे इन शस्त्रों की आज यह दशा क्यों हो गयी है ?

श्रीराम के मुख पर विषाद छा गया था। कृतान्तवदन किंकर्तव्य मूढ़ बन कर लव का युद्ध चातुर्य देख रहा था। श्रीराम बोले: 'सारथी मैं इस तरुण को देखता हूँ तो यह मुझे शत्रु नहीं लगता। मेरा हृदय इसकी ओर आकर्षित हो जाता है शस्त्र फेंककर, इसके पास जाकर इसे आलिंगन कर लूं ? क्या करूं ? कैसी उसकी सुकोमल देह है ? मुख कैसा लाल-लाल हो गया है ? श्रीराम लव के सामने देखते ही रहे।

जैसी दशा श्रीराम की लव के सामने हुई वैसी दशा लक्ष्मण की कुश के सामने हुई। उनके वासुदेव के शस्त्र कुश के सामने बेकार हो गए। लक्ष्मण कुश के सामने क्षण भर विस्मय दृष्टि से देख ही रहे थे कि उसने बाण प्रहार कर दिया····· लक्ष्मण जी मूर्छित होकर रथ में गिर पड़े ··· विराध भयभीत हो गया। उसने लक्ष्मणजी के रथ को अयोध्या की ओर दौड़ा दिया।

श्रीराम का ध्यान इस ओर था ही नहीं, वे तो लव की ओर

ध्यान पूर्वक देख रहे थे। लक्ष्मण जी का रथ अयोध्या के द्वार पर पहुँचा कि उनकी मूर्छा दूर हुई ... उन्होंने चारों ओर देखा तो न रणक्षेत्र दिखाई दिया और न ही शत्रु कुश । उन्होंने विराध को पूछा :

'विराध अपन कहाँ हैं ? शत्रु कहाँ है ? तू मुझे कहाँ ले जा रहा है ?'

'महाराजा, शत्रु के बाण प्रहार से आप मूर्छित हो गए, शत्रु आपको बन्दी बनाए, उसके पहले सुरक्षित स्थान पर ले जाने के लिए मैंने ......'

'अरे विराध......यह तेने अत्यन्त अयोग्य किया ......'

श्रीराम का मैं भाई......और महाराज दसरथ का मैं बेटा ... रण में से भागने का अनुचित कार्य किया ? तू शीघ्र मेरे रथ को वापस फिरा.... युद्ध क्षेत्र में ले चल कहाँ है शत्रु ? मैं अब क्षण भर भी विलम्ब नहीं करूंगा, और शत्रु का शिरच्छेद करूंगा ...... यह मेरा चक्र रत्न क्षण भर में शत्रु का संहार कर देगा.... मेरा रथ तू वापस फिरा ।'

लक्ष्मणजी ने गर्जना की । विराध कांप उठा, उसने रथ वापस फिराया; परन्तु उसके मन में भय, चिन्ता और शंका थी, शत्रु का अद्भुत पराक्रम वह देख चुका था। लक्ष्मण जैसे वीर को बाण प्रहार से मूर्छित कर देने वाला दूसरा शत्रु उसने नहीं देखा था। परन्तु लक्ष्मण जी की आज्ञा पालने के अतिरिक्त और कोई विकल्प था ही नहीं । विराध ने विरोध नहीं किया । वह तुरन्त रथ को रण क्षेत्र में ले आया । यहां आते ही लक्ष्मण जी रोष से भर गये ।

'खड़ा रह ......दुष्ट शत्रु ... तू कहाँ जाता है ? अभी ही चक्र रत्न से तेरा नाश करता हूँ ।

लक्ष्मण जी ने चक्र रत्न को आकाश में घुमाया ..... मानों दूसरा सूर्य.... घुमा कर कुश पर फेंका । लव और कुश ने आते हुए चक्ररत्न को नष्ट करने के लिए अनेक शस्त्र प्रहार किए, परन्तु सब निष्फल हुए ।

चक्र आया............

अंकुश की प्रदक्षिणा की । और ?

लक्ष्मण जी के पास वापस चला गया ।

जहां से आया था वही वापस ।

लक्ष्मण जी रोष से जल उठे । उन्होंने पुनः चक्र को आकाश में घुमाया और जोर से कुश पर फेंका ....

परन्तु वह तो चक्ररत्न था ! देवों से अधिष्ठित । चक्र रत्न का यह नियम है कि समान गौत्रिय पर वह प्रहार नहीं करता । कुश लक्ष्मण जी का समान गोत्रीय था । चक्र उस पर प्रहार कर ही नहीं सकता था । उसने उनके चारों ओर प्रदक्षिणा कर के उनका सम्मान किया ।

'इन तरुण शत्रुओं पर तो चक्ररत्न भी प्रहार नहीं करता । सैन्य में खलबली मच गई । श्रीराम लक्ष्मण के पास आए । चक्ररत्न लक्ष्मण के हाथ में निष्क्रिय पड़ा था । लक्ष्मण जी विषादमग्न हो गये ।'

लक्ष्मण, क्या इस भारत में नए बलदेव, वासुदेव तो पैदा नहीं हो गये हैं । ये शत्रु तो बड़े गज़ब के हैं.......ऐसे शत्रु कहीं देखे ही नहीं ?

'युद्ध स्थगित कर देना चाहिये ...... निरर्थक मानव संहार किसलिये ?

श्रीराम के मुख पर विषाद और ग्लानि छा गयी । शून्यमनस्क होकर लक्ष्मण के समाने देखने लगे। दूसरी ओर लव और कुश हर्ष से उछल पड़े।

उसी समय आकाश मार्ग से देवर्षि नारद और कलाचार्य सिद्धार्थ युद्ध क्षेत्र में उतर आए, और श्रीराम और लक्ष्मण को नमस्कार किया । लव और कुश ने सिद्धार्थ के संदेशानुसार युद्ध स्थगित किया। सबका ध्यान नारद जी और सिद्धार्थ की ओर केन्द्रित हो गया। मुस्कराते हुए नारदजी बोले :

हे दशरथ नन्दन, हर्ष के स्थान पर विषाद क्यों? आनन्द के स्थान पर शोक क्यों? पुत्रों से प्राप्त पराजय तो वंश को समुज्जवल करती है। हे महापुरुष, ये दो कुमार महासती सीता के लाड़ले पुत्र लव और कुश हैं। युद्ध तो बहाना है। ये तो आपके दर्शनों के लिए ही आए हैं। हे सुमित्रानन्दन, ये शत्रु नहीं, इसीलिए आपका चक्र. रत्न असफल रहा है। पूर्वकाल में भी भरत चक्रवर्ती का चक्ररत्न बाहुवली पर प्रहार नहीं कर सका था। इसलिए विषाद मत करो। लव कुश पर चक्ररत्न कैसे प्रहार कर सकता है? नारद जी की बात सुनकर वे रथ से नीचे उतर पड़े, और श्रीराम ने नारदजी से पूछा :

'देवर्षि, क्या वैदेही जीवित हैं? कहां हैं?

'हे दशरथ भूषण, वैदेही जीवित हैं। नारदजी ने कहा। उन्होंने सीता को जंगल में छोड़े जाने की घटना से लव कुश के जन्म, लग्न, दिग्विजय का सारा वृतान्त कह सुनाया। सिद्धार्थ का परिचय दिया।

श्रीराम विस्मय, लज्जा, खेद और हर्ष की मिश्रित भावनाओं से मूर्छित हो गये। लक्ष्मण विराध, कृतान्तवदन आदि ने तुरन्त

शीतल जलादि से उपचार किया। मूर्च्छा दूर होते ही श्रीराम खड़े हुए। दूरी पर रथारूढ़ लव-कुश को देख कर उनकी आंखों से अश्रु-धारा बह निकली। लक्ष्मण जी की आंखों में भी आंसू आ गये।

शस्त्र रथ में रखकर राम लक्ष्मण लव-कुश की ओर द्रुत गति से बढ़े। इस बीच शत्रुघ्न भी वहां पहुँच गये।

'कुश, पिता तथा काका अपने पास आ रहे हैं। तुरन्त दोनों भाई रथ से नीचे उतर पड़े। शस्त्र दूर फेंक दिये और राम लक्ष्मण की ओर दौड़ पड़े।

दोनों कुमारों ने श्रीराम के चरणों में मस्तक रख दिए। तत्पश्चात् लक्ष्मण की भी वंदना की। श्रीराम जमीन पर बैठ गए और लव कुश को अपनी गोद में बिठा लिया। बारम्बार दोनों के मस्तक का आलिंगन करते हुए रो पड़े। शोक और स्नेह से उनका हृदय द्रवीभूत हो गया।

राजा सेनापति और सुभट उनके चारों ओर महाराजा व वज्रजंघ और पृथु पास ही बैठे थे। सभी की आंखें अश्रुपूर्ण हो गयी थी।

दोनों कुमारों को लक्ष्मण जी ने अपने उत्संग में लिया, बाहु-पाश में जकड़ लिया। और बारम्बार उनके मस्तक को आलिंगन किया। लक्ष्मण का वज्र हृदय भी रो पड़ा।

शत्रुघ्न ने भी अपनी बाहें फैला कर दोनों कुमारों को अपनी छाती से लगाया और स्नेह वर्षा से उन्हें अभिषिक्त कर दिया। युद्ध भूमि स्नेही जन वात्सल्य की भूमि बन गयी।

पिता एवं पुत्रों के मिलन के समाचार सीताजी के पास भी पहुँच गए।

१६ : लव-कुश अयोध्या में

पुत्रों का पराक्रम देखा। पिता पुत्रों का मिलन देखा...... सीताजी बहुत प्रसन्न हुई और शीघ्र ही विमान द्वारा पुण्डरीकपुर चली गई।

सुग्रीव, विभीषण और भामण्डल युद्ध क्षेत्र में आये, वहाँ पिता के समागम का महोत्सव हो रहा था। दूसरे सभी राजा भी वहां एकत्र हो गये थे। सब अभूत पूर्व आनन्द में मग्न थे।

भामण्डल ने राजा वज्रजंघ का परिचय देते हुए कहा :—

हे दशरथ नन्दन, ये हैं महाराजा वज्रजंघ, जिन्होंने महासती सीता को आश्रय दिया। और आपके सुपुत्र लव को अपनी कन्या दी।

'वज्रजंघ, आप मेरे लिए भामण्डल हो, परम उपकारी हो, मेरे दोनों पुत्रों का जन्म से लेकर आज दिन पर्यन्त पालन किया, उन्हें बड़े किए......आपके उपकार कभी नहीं भूल सकता हूँ।

'हे जगद्वन्द्य महापुरुष, इसमें उपकार किस बात का ? यह कर्तव्य था और मैंने उसका पालन किया। इससे अधिक और कुछ नहीं। इसके बाद महाराजा ने श्री राम को पृथु का परिचय दिया।

श्री राम ने अपने दोनों सगों को गले लगाया, और अयोध्या

का आतिथ्य स्वीकार ने की विनती की, नारदजी एवं सिद्धार्थ से भी अयोध्या को पवित्र करने की प्रार्थना की ।

सुग्रीव ने लव कुश को संकेत से कहा कि सीताजी पुण्डरीक-पुर चली गई है । दोनों कुमार निश्चिन्त हो गये ।

पुष्पक विमान आ गया । राम, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के साथ लव-कुश विमान में आरूढ़ हो गए । उनके पीछे ही महाराजा वज्रजंघ पृथु, सुग्रीव, विभीषण आदि बैठ गए । अयोध्या का पूरा राज परि-वार विमान में यथा स्थान बैठ गया । खेचरों ने वाद्य-ध्वनि से आकाश को गुंजायमान कर दिया । धीमी गति से पुष्पक अयोध्या मार्ग पर चलने लगा । हजारों स्त्री-पुरुष लव कुश को देखकर प्रसन्न होते । श्रीराम के साथ लव कुश का भी जय-जयकार होने लगा । लव-कुश पहली बार अयोध्या को देख रहे थे । उन्हें बारम्बार माता की याद हो आती थी । श्रीराम कुमारों को बार-बार स्नेह आलिगन करते थे । राजमहल में पहुँचने पर श्रीराम ने मंत्रि मण्डल को आज्ञा दी ।

'सम्पूर्ण राज्य में महान् उत्सव मनाओ । सब मन्दिरों में पूजन रचाओ । दीन-हीन याचकों को दान दो तथा कारावास में से वन्दीजनों को मुक्त करो । मन्त्रि जनों ने श्रीराम की आज्ञा शिरो धार्य की । सम्पूर्ण राज्य में महोत्सव प्रारम्भ हो गया ।

श्रीराम के महल में ही लव कुश को ठहराया गया । हजारों नागरिक सीताजी के पराक्रमी पुत्र रत्नों को देखने व उनका सत्कार व अभिनंदन हेतु आने लगे । श्रीराम के महल मे कई वर्षों बाद चेतना का संचार हो गया, उन्होंने सीताजी का त्याग किया था, उस दिन से उनका महल शुन्यवत् हो गया था ।

आज लव कुश को लक्ष्मण जी के साथ भोजन करना था ।

दोनों कुमारों को लक्ष्मण जी अपने महल में ले गए। उनकी हजारों रानियों का अन्तपुर लव कुश का स्वागत करने, उन्हें बड़ा प्यार करने के लिए आतुर बन गया था।

लक्ष्मण जी ने इस प्रसंग पर वानर द्वीप के अधिपति सुग्रीव को भी निमन्त्रण भेजा था। साथ ही विभीषण, हनुमान, अंगद, भामण्डल आदि गाढ स्नेहियों को आमन्त्रित किया था। लक्ष्मणजी के आमन्त्रण को स्वीकार कर सभी वहां आ गये।

भोजन के पहले तो बन्धु युगल लव कुश लक्ष्मण जी के अन्तःपुर की रानियों के लाड़ प्यार से ही मुक्त नहीं हो सके। भोजन के समय लक्ष्मण जी उन्हें ले आये। सुग्रीव आदि राजाओं ने उनका वीरोचित सम्मान किया। देवी सीता के पुत्रों के रूप में आलिंगन किया।

विद्याधरों ने दिव्य वाद्ययन्त्र बजाना शुरु कर दिया और भोजन प्रारम्भ हुआ। सबों ने अत्यन्त हर्ष, आनन्द और उमंग से भोजन किया...... परन्तु सुग्रीव के मुख पर हर्ष नहीं था, वे गम्भीर होकर भोजन कर रहे थे। बारम्बार उनकी दृष्टि लव कुश की ओर जाति थी। भामण्डल सुग्रीव के मुख पर से उनके मनोभाव जानने का प्रयत्न कर रहे थे, जबकि लव कुश स्नेह सागर में गोते खाते हुए इस नई दुनियां मे लिन हो गये थे।

भोजन विधी पूर्ण होने पर सब अतिथि लक्ष्मण जी के विशाल मन्त्रणा गृह में प्रविष्ट हुए। प्रमुख सिंहासन पर लक्ष्मण जी लव-कुश के साथ आरुढ़ हुए। उनके आसपास रखे हुए सिंहासनों पर विभीषण, सुग्रीव आदि राजा, महाराजा आसीन हो गये। लक्ष्मण जी ने आमन्त्रित अतिथियों से कहा :—

'प्रिय मित्रों, आज आप मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर मेरे द्वार

पर पधारे हैं, इससे मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है। आज का भोजन समारोह मैंने अपने प्रिय कुमारों लव-कुश के आगमन के उपलक्ष में आयोजित किया है। आप सबों ने यहां पधार कर मेरे आनन्द में वृद्धि की है।

कुछ क्षण मौन में ही व्यतीत हुए। महाराज सुग्रीव ने लक्ष्मण जी के सामने देखा और उनकी मौन स्वीकृति प्राप्त कर बोले :—

'महाराजा सुमित्रानन्दन की जय हो। हम तो आपके सदैव के साथी हैं, और आपके हार्दिक स्नेह से आकर्षित होकर आए हैं। महासती सीता के दो पुत्र लवण व अंकुश के पुनः पुनः दर्शन करने से हृदय तृप्ति अनुभव करता है...... इनको देखता हूं और महासती की स्मृति पट पर अंकित हो जाती है...... जहांतक महासती अयोध्या में न पधारें, तब तक हृदय दुःखी ही बना रहेगा.......' सुग्रीव ने अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों को उतरीय (अंगोछे) से पोछा और गद्‌गद् स्वर में पुनः बोला :—

'जब युद्ध भूमि पर...... इन कुमारों के पक्ष में भामण्डल को युद्ध करते देखा तो आश्चर्य हुआ और उनको पूछा तो और भी अधिक आश्चर्य हुआ। उस समय लवण और अंकुश के शिविर में विराजित देवी सीताजी के मैंने दर्शन किए...... उस पावन मूर्ति के दर्शन करने से मुझे हर्ष और विषाद दोनो का अनुभव हुआ। महाराजा विभीषण भी साथ ही थे......वर्षों से श्रीराम द्वारा परित्यक्त महासती...... हृदय पर वेदना का पाषाण रखकर जी रही है....... इन दो कुमारों का दर्शन ही उनका जीवन है...... इसलिए हे अयोध्यापति मेरी आपको प्रार्थना है कि देवी सीता को अयोध्या ले आना चाहिए। इसके लिए श्री रामचन्द्रजी को समजाना चाहिए....... अन्यथा इन कुमारों को सीताजी के पास भेज देना चाहिए....... पति तथा पुत्रों के विना सीताजी जी नहीं सकती।'

सुग्रीव सिंहासन पर बैठ गए, उनकी वाणी ने सबों के दिल हिला दिए। लव और कुश तो रो पड़े। भामण्डल और विभीषण की आंखों से आंसू बहने लगे। हनुमानजी उद्विग्न होकर बोल उठे :

'यह सब क्या हो गया ? ...... कैसे हो गया ? ...... मुझे तो बहुत समय बाद विदित हुआ। जो हुआ वह बहुत ही अयोग्य हुआ। देवी सीताजी को तत्काल अयोध्या ले आना चाहिये। अयोध्यापति आज्ञा दें तो मैं ले आऊँ। महाराजा सुग्रीव का कथन बिल्कुल सत्य है ...... पति और पुत्रों के बिना महासती जीवित नहीं रह सकती :

लक्ष्मण जी विचार में पड़ गये। उन्हें वह दिन याद आ गया जिस दिन श्रीराम ने सीता के त्याग का निर्णय किया था .... लक्ष्मण जी ने स्पष्ट विरोध किया था। श्रीराम के चरणों में पड़कर ....आँखों से आंसू बहाकर ...... सीताजी का त्याग नहीं करने हेतु विनती की थी ...... तो भी राम अपने निर्णय पर अटल रहे थे। इस प्रसंग की स्मृति के साथ ही रोष चढ़ आया, परन्तु तुरन्त दूसरा प्रसंग स्मृति पर आ गया ...... सीताजी को जंगल में छोड़ कर आए हुए कृतान्तवदन ने जब सीताजी का संदेश राम को सुनाया, तब वे मूर्छित हो कर गिर पड़े थे ......और करुण आक्रन्द करते हुए सीताजी को ले आने के लिए जंगल में दौड़ पड़े थे। यह दृश्य आंखों के सामने आते ही सारा रोष दूर हो गया ...... उन्होंने सुग्रीव के सामने देखा, हनुमान जी के सामने देख कर बोले :—

'और पिताजी नहीं मानें, तो हम वापस पुण्डरीकपुर चले जायेंगे, यह बात भी पिताजी को कह देना।' लव ने लक्ष्मण जी का हाथ पकड़ कर कहा—लक्ष्मण जी ने उनके मस्तक पर हाथ फिरा कर कहा :—

'वत्स, आर्यपुत्र को मैं अवश्य कहूँगा। मातृभक्त पुत्र का यही

कर्तव्य होता है।'

लक्ष्मण जी ने भामण्डल की ओर देख कर कहा:—'अपन आर्यपुत्र को कब मिलें।' भामण्डल ने लक्ष्मण जी के सामने देखा। उनके मुख पर रुखी हँसी आ गयी थी। वे बोले :—

'आप कहें तब आर्यपुत्र को मिलें, परन्तु मिलने का कोई विशेष अर्थ है क्या? जब नारद जी ने युद्ध भूमि पर पुत्रों का परिचय कराया और कहा कि सीताजी जीवित है, और पुण्डरीकपुर में है, तब भी 'सीता को पुण्डरीकपुर से ले आओ, और पुत्रों के साथ उन्हें भी अयोध्या में प्रवेश कराओ, ऐसा उन्होंने नहीं कहा। ऐसे श्रीराम के पास जाने में कोई सार नही दिखता।'

भामण्डल की बात सुन कर सभी विचार में पड़ गये। उनका कथन सत्य था। कुमारों के नगर प्रवेश के समय श्रीराम ने सीता का स्मरण भी नहीं किया था, उनके कुशल समाचार भी नहीं पूछे थे। अतएव वे सीताजी को अयोध्या ले आने की बात से सहमत होंगे या नहीं, इसके लिए भामण्डल की शंका ठीक ही लगी।

'मामाजी मान लो कि पिताजी सहमत न होवें, तो चिन्ता क्यों करनी? हम माता के पास चले जायेंगे। माता को किसी बात में ओछी नहीं आने देंगे। कुश बोला।

'तो अपन कल सवेरे ही मिलें, लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा।'

'आप स्वयं ही बात करेंगे तो ठीक रहेगा।'

'नहीं अपन सब एक साथ आर्यपुत्र को प्रार्थना करेंगे। इसलिए सबको आना है।'

'परन्तु हमारा तो कोई प्रयोजन नहीं है। लव-कुश दोनों बोले :—

'सत्य है, कुमारों को हमारे साथ नहीं आना है।' सब अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

लव और कुश अपने निवास पर चले गये। दोनों लक्ष्मण जी के महल में हुई चर्चा के विचारों में डूब गये थे। माता के प्रति काका लक्ष्मण से लगाकर सभी राजा महाराजाओं की श्रद्धा, भक्ति एवं समर्पण से दोनों भाई बहुत प्रभावित हो गये थे। सुग्रीव के हृदय स्पर्शी वक्तव्य से दोनों का हृदय गद्‌गद् हो गया था। परन्तु श्रीराम सहमत होंगे या नहीं, इस बात की उन्हें शंका थी।

'यदि पिताजी कल सहमत नहीं हुए? कुश ने लव का निर्णय जानने हेतु पूछा।'

'ऐसी शंका ही क्यों करना? पिताजी सहमत हो जायेंगे। ऐसा मुझे लगता है।' लव ने आत्म विश्वास व्यक्त किया।

'हां, माता का त्याग करने के पश्चात् पिताजी उन्हें ढूंढने को जंगल में गये थे ...... माता को वापस ले आने के संकल्प से ही गये थे ...... अतः अब इन्कार तो नहीं करेंगे, यह बात निश्चित है, कुश बोला :—

'तो भी अपना तो निर्णय है ही कि यदि माताजी को यहां नहीं लाया जाए, तो अपन यहां से चले जायेंगे।' कुश ने आखरी उपाय भी पुनः प्रकट किया।

रात बहुत बीत गई थी। दोनों भाई निद्राधीन हो गए ...... इन्हें क्या मालूम था कि भावी में क्या रहस्य छुपा हुआ है।

२० : अग्नि–परीक्षा

श्री लक्ष्मण के महल पर विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, भामंडल अंगदादि सभी राजा आ पहुँचे । लक्ष्मण जी ने सबका स्वागत किया । वहां से वे सब एक साथ श्रीराम के महल आए ।

श्रीराम को प्रणाम कर सब यथोचित आसनों पर बैठ गए । कुशल पृच्छा की औपचारिकता पूर्ण होने के उपरान्त लक्ष्मणजी ने स्वस्थता पूर्वक श्रीराम को कहा :

'आर्य-पुत्र को हम सबकी एक प्रार्थना है कि महादेवी सीताजी पुण्डरीकपुर में है । आपके विरह में व्याकुल और लव-कुश के बिना संतप्त महादेवी को शीघ्र ही यहाँ ले आना चाहिए । अन्यथा उनका जीवन भय में है । पति और पुत्र के बिना वे जीवित नहीं रह सकती । अतः यदि आप आज्ञा प्रदान करें. तो हम आज ही यहां ले आये ।'

लक्ष्मणजी को जो कहना था, वह उन्होंने स्पष्टता व स्वस्थता से कह दिया । उसके बाद सुग्रीव खड़े हुए और श्रीराम को नमन कर बोले :

'हे महापुरुष, महादेवी को अत्यन्त सम्मान के साथ अयोध्या ले आना चाहिए आपके विरह से वे संतप्त हैं···· अब प्रजा में भी

उनके लिए अब कोई अपवाद नहीं है। वे परम विशुद्ध महासती हैं, यह बात निःसंदेह हैं।'

'देवों ने भी महासती के रूप में उनकी उद्घोषणा की थी।' हनुमानजी बोल उठे।।

'महाराजा लवण और अंकुश भी अब आपके पास आ गए हैं......कि जिन दोनों कुमारों के आधार पर महादेवी कुछ शांती अनुभव करती थी.....' सुग्रीव बोले।

श्रीराम के मुख पर गंभीरता छाई हुई थी। दृष्टि जमीन पर लगी हुई थी। लक्ष्मण सुग्रीव आदि की बातें वे सुनते जाते थे, और सोचते जाते थे। उन्होंने सुग्रीव के सामने देखा और अत्यन्त दृढता-पूर्वक कहा :

'कपीश्वर, जानकी को किस तरह अयोध्या लाया जा सकता है? श्रीराम क्षण भर मौन रहे......सब के जीव अधर में हो गए थे। श्रीराम ने आगे कहा : 'जानकी पर प्रजा द्वारा लगाया कलंक दूर कहां हुआ है? हां, कलंक सच्चा नहीं है, असत्य है......परन्तु असत्य लोकोपवाद भी अंतराय है भारी अंतराय है। मैं मानता हूँ कि जानकी निष्कलंक है......वह महासती है, उसका चरित्र निष्कलंक है......यह भी जानता हूं कि वह निर्मल है.....'

श्रीराम पुनः विचारमग्न हो गए। लक्ष्मण जी अस्वस्थ होकर रुक गए। सुग्रीव आदि भी विचार में पड़ गए। लक्ष्मण जी बोले :

'हम सब ये बातें सुनने नहीं आए हैं।' यही को यही लोकोपवाद की बात करनी हो तो हम चले जाते हैं। कुमार लव और कुश भी महादेवी के पास चले जायेंगे......आज भी मैं कहता हूँ कि

जो कोई देवी सीता के लिए अपवाद बोलेगा, उसका मैं शिरच्छेद करूंगा……अब मैं सहन नहीं कर सकता।'

'लक्ष्मण, क्या मैं जानकी को नहीं चाहता हूं? जानकी बिना मेरा जीवन श्मशानवत बन गया है, यह तू नहीं जानता क्या? जानकी के विरह की व्यथा तो मैं ही जानता हूं, परन्तु अब मैं जानकी को अयोध्या में इस तरह लाना चाहता हूं, कि प्रजा का एक भी मनुष्य बाद में कुछ नहीं कहने का रहे। इस हेतु विशुद्धि की कसौटी पर जानकी की परीक्षा ली जाए……प्रजा कसौटी देखे, फिर जानकी अयोध्या में प्रवेश करे……जो मन, वचन, काया से विशुद्ध है, उसे कसौटी से भय नहीं होना चाहिये।'

'आप कैसी कसौटी करना चाहते हैं?' लक्ष्मणजी ने पूछा।

'यह निर्णय बाद में करेंगे।

'तो पहले देवी सीता को हम ले आवें?

'पहले अयोध्या के बाहर विशाल मंच बनवाओ, मंडप बंधवाओ, जिसमें हजारों प्रजाजन बैठ सकें……मैं वहां जाऊंगा…… उसके बाद तुम जानकी को ले आना।'

'फिर आप जानकी की कसौटी करेंगे? (दिव्य करेंगे?)

'हां।'

'जैसी आपकी इच्छा और आज्ञा।'

श्रीराम को प्रणाम कर लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव आदि लक्ष्मणजी के निवास पर आए। हर्ष और विषाद का अनुभव करते हुए वे भविष्य की कल्पना में डूब गए। लव और कुश भी वहाँ पहुँच गए थे। महल में लक्ष्मणजी के प्रवेश करते ही उन्होंने पूछा :

'पिताजी सहमत हो गए क्या?

'सहमत हुए, परन्तु वे महादेवी के सतीत्व की कसौटी करवा-कर प्रजा के समक्ष उन्हें निष्कलंक सिद्ध करने के बाद अयोध्या में प्रवेश करायेंगे......'

'भले ही कसौटी करें। हमारी माता निष्कलंक है......'निर्दोष भाव (सरल भाव) से लव कुश बोले।

लक्ष्मणजी दोनों कुमारों को संग में लेकर मस्तक पर स्नेहालिंगन किया।

कपीश्वर सुग्रीव प्रविष्ट हुए। और लक्ष्मण जी को प्रणाम कर उन्होंने कहा :

"मैंने मंत्रिवर्ग को सूचित कर दिया है। नगर के बाहर विशाल मंडप बन जाएगा। विशाल मंच की श्रेणिया भी बन जायेगी, जिससे प्रजा ऊपर बैठ कर देख सके।

'और आप पुण्डरीकपुर जाने की तैयारी करो।'

'जैसी आपकी आज्ञा। कल सवेरे जाऊंगा।'

'पुष्पक विमान लेकर जाना। महादेवी को मेरी ओर से भी पुनः २ प्रार्थना करना, और अयोध्या पधारने के लिए कहना, यह कहना कि आपका बालक लक्ष्मण......आपके दर्शन के लिए लालायित है।'

'अवश्य कहुँगा, महाराज! महादेवी को लिए बिना वापस नहीं आऊंगा।'

'कपीश्वर, माता को हम दोनों की याद कराना, प्रणाम कहना और अवश्य ही माता को लेकर आना ......हम साथ में आएं क्या? कुश बोला।

'तुम्हारा कुशल वृतान्त महादेवी को निवेदित करूंगा। परन्तु तुम्हारे साथ की जरूरत नहीं है। तुम्हारे आने से कदाचित.......'

'नहीं, नहीं, हमारा आग्रह नहीं है। आप आपकी योजनानुसार काम करो। यही उचित है। लव ने सुग्रीव का संकोच दूर करते हुए कहा।'

'सुग्रीव के मन में अनेक तर्क-वितर्क उठ रहे थे, 'क्या महादेवी अयोध्या आने हेतु राजी हो जावेंगी ? श्रीराम द्वारा त्याग किए जाने से उनके हृदय पर पड़ा हुआ घाव अच्छा हो गया होगा ? परन्तु भले ही वे श्रीराम से विरक्त हो गयी हो, पर लवकुश पर तो उनका प्रेम अपरम्पार है। इनके लिए तो वे आयेगी ही। परन्तु नहीं, कुमारों को तो वे पुण्डरीकपुर वापस बुला लें। नहीं, नहीं मैं उनको इस तरह से समझाऊंगा कि वे आने हेतु तैयार हो जावें.... परन्तु हाँ मुझे बात तो स्पष्ट करनी ही होगी कि श्रीराम आप से दिव्य करवाना चाहते हैं। उनको बाद में यह खयाल न आए की सुग्रीव ने उनके साथ छल किया है। परन्तु महासती को दिव्य का भय ही नहीं लगेगा।'

पुण्डरीकपुर आगया, विमान को नीचे उतारा गया।

सुग्रीव महाराजा वज्रजंघ से मिलकर सीधे सीताजी के आवास पर आ पहुँचे।

परिचारिका द्वारा अपने आगमन के समाचार भेजे। सीताजी ने द्वार पर आकर कपीश्वर का स्वागत किया। सुग्रीव ने उन्हें प्रणाम किया........

सीताजी ने सुग्रीव का यथोचित सत्कार किया। स्नान, भोजनादि से निवत होने के बाद सुग्रीव ने अवसर देख कर सीताजी के

समक्ष अपनी बात रखी :

'महदेवी मैं श्रीराम की आज्ञा से यहाँ आया हूँ। आपके लिए उन्होंने पुष्पक विमान भेजा है। आप विमान को सुशोभित करो और अयोध्या पधारो ...... श्री लक्ष्मण जी आपके दर्शन के लिए आतुर हैं। कुमार लव और कुश भी निरन्तर अपकी स्मृति कर रहे हैं।'

'कपीश्वर, अच्छी बात है कि आप यहां आए हैं, परन्तु मैं अयोध्या...... किस प्रकार आऊं ? अभी भी वह भयानक दृश्य भुलाया नहीं जा सकता ... सिंह निनाद जैसे भयानक जंगल में मुझ सगर्भा का त्याग कर दिया था उसके दुःख का अभी तक शमन नहीं हुआ है...तो किस नए दुःख के लिए आर्यपुत्र के पास जाऊं ? अयोध्या आने का अब इस जीवन में कोई प्रयोजन ही नहीं है '

सीताजी का स्वर कांप रहा था। हृदय का दुःख शब्दों द्वारा हल्का हो गया था। सुग्रीव खूब सहानुभूति पूर्वक सुन रहे थे। पुनः प्रणाम कर बोले :

'महादेवी आपका कथन सत्य है ......आपके दुःख की कल्पना मुझे कम्पायमान कर देती है। आपने अद्भुत सहन शक्ति पूर्वक दुःख का प्रतिकार शांति से किया है। परन्तु अब दुःखों का अन्त आ गया है। श्रीराम, लक्ष्मण अनेक राजाओं और प्रजाजनों के साथ अयोध्या के बाहर सिंहासन पर बैठे हैं ... सब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्रीराम चाहते हैं कि महादेवी 'दिव्य' करके अपने शील की विशुद्धि प्रजाजनों को प्रदर्शित करें ...... इसलिए हे महादेवी आप अवश्य अयोध्या पधारो !'

'कपीश्वर,शुद्धी की परीक्षा के लिए तो मैं तत्पर ही हूँ ... अच्छा, मैं अयोध्या चलूँगी।'

सीताजी ने स्वीकृति प्रदान कर दी। सुग्रीव प्रसन्न हो गये। महाराजा वज्रजंघ को संदेश भेजा, वे आ गए। सीताजी ने उनको अपना निर्णय सुनाया। उनकी आँखों में आँसू उमड़ आए।

'देवी, मुझे हर्ष भी होता है और दुःख भी होता है…… प्रिय वहन उसके घर जाए…… यह मैं समझता हूँ…… तू सुखी हो…… परन्तु अपने इस धर्म भाई को कभी कभी याद करना…… यहां मुझ से कोई भूल हुई हो, तो क्षमा करना ' वज्रजंघ रो पड़े। सीताजी भी रो पड़ी। सुग्रीव का हृदय भर आया।

'हे धर्मभ्राता! आपके उपकारों को मैं जन्मजन्मान्तर नहीं भूल सकती……आप पिता, माता……भ्राता हैं। आपको मैंने तथा कुमारों ने वहुत कष्ट दिए हैं। आपने हमारे सुरक्षार्थ क्या नहीं किया? हे वन्धु, मैं आपके अपार वात्सल्य और निःस्वार्थ स्नेह से मेरे जीवन में आये हुए घोर कष्ट को सहन करने में समर्थ हुई हूँ … ऐसा दुःख संसार में किसी स्त्री को न भोगना पड़ ऐसी मैं परमात्मा से प्रार्थना करती हूँ……'

सीताजी की आंखों में आँसू वहने लगे। महाराजा वज्रजंघ रुँधे हुए स्वर में बोले :—

हे भद्रे, तू जव से पुण्डरीकपुर में आयी, तभी से मेरे, मेरे परिवार में और प्रजाजनों में सुख वृद्धि हुई है…… आनन्द में वृद्धि हुई हैं। तू यहाँ से जाय, यह वात दुःख देने देने वाली है…… परन्तु वहन हमेशा भाई के घर पर कैसे रह सकती है?

महाराजा ने शीघ्र ही समग्र नगर में सीताजी के अयोध्या

गमन के समाचार घोषित करवा दिए। समाचार मिलते ही प्रजाजन सीताजी के महल के पास एकत्र होने लगे। सीताजी ने पुत्र वधुओं को साथ में चलने की तैयारी करने का आदेश दिया। और स्वयं झरोखे में जाकर प्रजाजनों का अभिनन्दन झेलने लगी। हजारों स्त्री पुरुषों की आँखें आँसुओं से गीली हो गई।

'अब सीताजी सदा हेतु अयोध्या जा रही हैं……लव-कुश अपने पिताजी के पास पहुँच गये हैं। अब सीताजी पुण्डरीकपुर में नहीं रहेगी…… प्रजाजन परस्पर बातें करने लगे।

'महादेवी, अब अपने को शीघ्रता करनी चाहिए।' सुग्रीव ने दोनों हाथ जोडकर नमनकर नम्रता पूर्वक कहा। सीताजी दोनों हाथ जोड़ कर प्रजा को नमस्कार,किया और झरोखे में से महल में आई। पुत्र वधुयें भी तैयार हो गयी थी। महाराजा वज्रजंघ के कहने पर सीताजी उनके अन्तपुर में गयी, और रानियों को मिल आई।

सीताजी अलंकारित पुष्पक में आरुढ हुई। उसके बाद पुत्र वधुयें व बाद में महाराजा सुग्रीव बैठे।

'महासती की जय हो।' प्रजाजनों ने जय जयकार किया।

महाराजा ने दोनों हाथ जोड़ कर सबको नमस्कार किया और विदा दी।

महाराजा ने विदा दे दी, परन्तु उन्हें भावी के भेद का क्या पता था। सीताजी को यह अन्तिम विदा दे रहे हैं……उनके अन्तिम दर्शन कर रहे हैं।

सीताजी स्वयं भी कहां जानती थी कि वे अब अयोध्या में

प्रवेश ही नहीं करेंगी ।

विमान गतिमान हुआ। सुग्रीव ने विमान को अयोध्या की दिशा में घुमाया। अयोध्या के हजारों स्त्री पुरुष सीताजी की प्रतीक्षा कर रहे थे।



२१ : सीताजी चारित्र–पथ पर

अयोध्या के बाह्य प्रदेश।

महेन्द्रोदय उद्यान।

भव्य मण्डप बनाये गए हैं। विविध प्रकार के पुष्पों के तोरण बांधे गये हैं। सैकडों राजा और हजारों प्रजाजन बैठे हुए हैं। उत्कंठित नयनों से हजारों प्रजाजन पुष्पक विमान की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सबकी दृष्टि क्षितिज पर केन्द्रित हो रही है। मध्यान्ह का समय पूरा हो गया है और सूर्य पश्चिम की ओर ढल रहा है।

उसी समय क्षितिज पर पुष्पक दृष्टिगोचर हुआ। प्रजाजन उठ खड़े हुए। राजा लोग ऊँचे होकर देखने लगे। तीव्रगति से आते हुए पुष्पक ने अयोध्या की सीमा में प्रवेश किया। अन्तरिक्ष में ही अयोध्या की तीन प्रदक्षिणा कर सुग्रीव ने विमान महेन्द्रोदय उद्यान में उतारा।

कुमारिकाओं ने अक्षतादि से सीताजी को वधाया। वे पुष्पक विमान में से नीचे उतरी, उनके पीछे पुत्र वधुएं उतरी और फिर कपीश्वर सुग्रीव उतरे। तुरन्त ही लक्ष्मणजी सिंहासन से उतर कर दौड़ आये और सीताजी के चरणों में भाव पूर्ण प्रणाम किया। अन्य राजाओं ने भी लक्ष्मण जी का अनुसरण किया।

सीताजी को सिंहासनारुढ़ कराया। पुत्र वधुओं को भामण्डल अयोध्या ले गये। लव-कुश अयोध्या में ही थे।

भामण्डल, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगद आदि राजा-महाराजाओं सहित लक्ष्मण ने नम्रता व भक्तिपूर्वक सीताजी को निवेदन किया।

'महादेवी, आपकी इस अयोध्या में······आपके महल में प्रवेश करो और इस भूमि को पावन करो। यह हमारी आपसे आग्रह-पूर्वक प्रार्थना है।'

'वत्स, अयोध्या में प्रवेश करू, उसके पहले मुझे शुद्ध होने दो। जहां तक मुझ पर लगाया गया कलंक दूर न हो, मैं अयोध्या में प्रवेश नहीं करूंगी।'

लक्ष्मण जी ने पुनः सीताजी को वन्दना की और श्रीराम के पास जाकर सीतजी के संकल्प की जानकारी दी। राम तो चाहते ही थे। वे सीताजी के पास पहुँचे। सीताजी खड़ी हो गई।

श्रीराम के मुख मण्डल पर गंभीरता छाई हुई थी। इस गंभी-रता का अर्थ था न्याय की निष्ठुरता, सीताजी के प्रति उनका स्नेह अभी तो दूर हो ही गया था। उनके प्रति कोई भी कोमल भावना श्रीराम के हृदय में नहीं थी। उनकी दृष्टि जमीन पर लगी हुई थी। वे बोले :—

'वैदेही, रावण के घर में रहने पर भी उसने तेरा शील खंडित नहीं किया हो, तो वहाँ उपस्थित सब लोगों के समक्ष अपनी शुद्धि के लिए 'दिव्य' कर।

सीताजी के मुख पर मुस्कान आ गयी, परन्तु यह मुस्कान

हृदय के उल्लास की नहीं थी । बल्कि हृदय की अपार व्यथा की थी। इस मुस्कान के द्वारा श्रीराम के 'दिव्य' करने के आदेश को निर्भयता से स्वीकार करने की तत्परता उन्होंने प्रदर्शित की । उनके हृदय में वर्षों से ''''' जब से श्रीराम ने उनका त्याग किया था, तभी से''''''श्रीराम को जो कुछ कहने की उत्कंठा थी, वह कहने के लिए मुख ऊंचा किया। उनकी दृष्टि में तीव्रता आ गयी और वचन निकला ।

'अहो ! आर्यपुत्र '''''' आपके समान दूसरा कोई विद्वान इस पृथ्वी पर नहीं है। मेरा दोष जाने विना. मैं सदोष हूँ या निर्दोष इस बात का निर्णय किए बिना '''''' भयंकर जंगल में मेरा त्याग किया । धन्य है आपको ! हे काकुत्स्थ पहले मुझे दण्डित कर बाद में मेरी परीक्षा लेने को तत्पर हुए हैं।'''''' वाह, धन्य है आपको । सचमुच आप विलक्षण हैं। चिन्ता न करें ''''''मैं परीक्षा देने को तैयार हूं ।

· श्रीराम के मुख पर लज्जा, खेद और ग्लानि की रेखायें उभर आई । वे बोले :—

'जानकी, मैं जानता हूँ '''''' मानता हूँ कि तुम्हारा कोई दोष नहीं है। लोगों ने जो अपवाद तुम्हारे लिए पैदा किया है, उसे दूर करने के लिए ही मैं परीक्षा लेना चाहता हूँ '''''' '

'कौन ना करता है ? मैं पाँचों प्रकार के दिव्य स्वीकार करती हूँ। आप कहो तो जाज्वल्यमान अग्नि में प्रवेश करूं । आप कहो तो अभिमन्त्रित चावल खा जाऊं । आप कहो, तो '''''' त्राजवे पर बैठूं आप कहे तो गरम गरम पिघला हुआ शीशा पी जाऊँ । आप कहो तो जीभ पर तलवार चला दूँ '''''' । क्या चाहते हो, बोलो ? चाहो तो अयोध्या की प्रजा से पूछ लो ।'

इसी समय आकाश में रह रहे नारद और सिद्धार्थ बोल उठे·

'नहीं, नहीं, हे राघव, सीता सती हैं, महासती हैं.... हम निश्चय पूर्वक कहते हैं कि यह महासती है .. आप अन्य कोई विकल्प न करें।'

वहां उपस्थित अयोध्या वासी भी बोल उठे :—

'हे दशरथ नन्दन, सीताजी महासती हैं ......इनके द्वारा दिव्य मत कराओ। हम मानते हैं कि अवश्य ही महासती हैं।'

लोगों में हाहाकार फैल गया। सब श्रीराम को प्रार्थना करने लगे। पांच दिव्य की घोषणा ने सबके हृदय को कम्पायमान कर दिया, परन्तु श्रीराम दृढ़तापूर्वक बोले :—

'हे प्रजाजनों, तुम्हारी कोई मर्यादा नहीं है तुम्हारे वचन की कोई मर्यादा नहीं है। तुम्हीं लोगों ने पहले कल्पित कलंक से पहले जानकी को कलंकित की थी... आज तुम कहते हो कि सीता महासती है। पहले वह सदोष किस प्रकार से और आज महासती कैसे ?

'रावण के घर में रही हुई सीता शुद्ध नहीं हो सकती' यों कहने वाले भी तुम्हीं लोग थे न ? पर स्त्री लम्पट रावण ने सीता के शील को अखण्डित नहीं रखा होगा, चौराहे न बाजारों में बात करने वाले लोग भी तुम्हीं लोग थे न ? आज तुम किस आधार पर कह रहे हो कि सीता महासती हैं ? पुनः तुम कहने लगोगे कि सीता कलंकित है। कौन तुम को रोक सकेगा। तुम को निश्चय हो जाए, फिर कभी भी शंका न उठे, इसलिए सीता 'दिव्य' करेगी। सीता अपने सतीत्व की प्रतीति करवाने के लिए जाज्वल्यमान अग्नि में प्रवेश करेगी '

'नहीं, नहीं, महाराज ...... प्रजाजन चिल्ला उठे।

'सीता दिव्य करेगी ही, तुम्हारे कहने से ही...... तुम्हारे कल्पनाजन्य दोषारोपण के कारण से ही मैंने जानकी का त्याग

किया था। आज तुम्हारे मन में जानकी के सतीत्व की प्रतीति हो जाए, इसके लिए वह दिव्य करेंगी ......अग्नि में प्रवेश करेंगी ......'

अयोध्या की गली-गली में सीताजी द्वारा दिव्य किए जाने की प्रतिज्ञा के समाचार फैल गये। 'सीताजी कल दहकती हुई अग्नि में प्रवेश करेंगी.......' यह बात सुनकर सभी नगर वासी के हृदय कांप उठे। श्रीराम ने आज्ञा दी।

'तीन सौ हाथ लम्बा खड्डा खोदा जाय। गहराई दो पुरुष रखी जावे, और उस खड्डे को चन्दन की लकड़ी से भरा जावे।'

सीताजी को महेन्द्रोदय उद्यान में ही रमणीय कुटी में रखा गया। श्रीराम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, लव-कुश और सुग्रीव-भामण्डल आदि उद्यान में ही रात रहे ......श्रीराम का मन उद्वेग पूर्ण हो गया था। लक्ष्मण भारी मनो मन्थन में पड़ गये थे। लव-कुश 'हमारी माता महासती है...... इस बात की प्रतीति अयोध्या वासियों को हो जायगी,' इस कल्पना की मधुरता अनुभव कर रहे थे। सुग्रीव, हनुमान आदि लंका के उस भीषण युद्ध के स्मरणों में खोए हुए थे।

जिन सीताजी के लिए अपनों ने भीषण युद्ध किया, वही सीताजी कल अपन सब की आंखों के सामने दहकती अग्नि में प्रवेश करेंगी....!! कैसी संसार की भीषणता है?

महेन्द्रोदय उद्यान में जब सीताजी के 'दिव्य' के लिए खाई खोदी जा रही थी, उसी अयोध्या की दूसरी ओर एक महा मुनि राक्षसी के उपद्रवों को अपूर्व धैर्य से सहन करते हुए कर्मक्षय कर रहे थे।

उसकी कथा इस प्रकार है।

वैताढ्य पर्वत के उत्तर विभाग के राजा हरि विक्रम का जय भूषण नाम का एक पुत्र था। जब वह यौवनावस्था को प्राप्त हुआ,

तब उसके पिता ने आठ सौ कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण कराया ।

एक दिन जय भूषण ने अपनी एक पत्नी किरण-मण्डला को मामा के पुत्र हेम शिख के साथ शय्या सुख का उपभोग करती हुई देखी, तब उसे क्रोध आया ...... वैराग्य हो गया......क्रोध में उसने किरण मण्डला को निकाल दी। तथा वैराग्य धारण कर संसार त्याग की दीक्षा ले ली। किरण-मण्डला ने जय भूषण के लिए वैर की गांठ बांध ली, मृत्यु को प्राप्त हुई और राक्षसी के रूप में जन्मी। जय भूषण मुनि अपूर्व आत्म साधना करते हुए विचरते विचरते अयोध्या के बाह्य प्रदेशों में पधारे। न प्रमाद, न आराम, निरन्तर ध्यान व कार्योत्सर्ग, परमब्रह्म में परम लीनता।

महामुनि ने विशिष्ट ध्यान साधना प्रारम्भ की। वह राक्षसी महामुनि को ढूंढती हुई वहाँ आ पहुँची। पूर्व जन्म का वैर था। महामुनि पर उपसर्ग प्रारम्भ कर दिय।

उपसर्गों में भी जो समता धारण करें, ध्यान की अखण्डता कायम रखें, 'उसे केवल ज्ञान' प्रकट होता है। महामुनि भूषण को केवल ज्ञान प्रकट हुआ। इन्द्र ने अवधि ज्ञान से देखा—" देवों सहित केवल ज्ञान का महोत्सव करने शीघ्रता पूर्वक अयोध्या आया। देवों ने अयोध्या के महेन्द्रोदय उद्यान में तैयार होता हुआ अग्नि कुण्ड देखा, सारा वृतान्त जाना और इन्द्र को निवेदन किया :—

'हे देव राज इन्द्र, लोगों द्वारा लगाये गये मिथ्या कलंक से.... अपनी शुद्धि की प्रतीति कराने हेतु सीता अग्नि में प्रवेश करेगी ...... '

इन्द्र ने तुरन्त सेनापति को आज्ञा दी—'आप देवी का सानिध्य करो (के सानिध्य में रहो) वह महासती हैं। मैं महर्षि का केवल ज्ञान महोत्सव करूँगा।

इन्द्र ने महर्षि के केवल ज्ञान का भव्य महोत्सव किया। केवल ज्ञानी महर्षि ने सुवर्णमय कमल पर आसीन होकर दिव्य देशना की इन्द्र ने अपूर्व आनन्द का अनुभव किया।

इन्द्र का सेनापति देवों सहित सीताजी की रक्षा के लिए तत्पर आकाश में अदृश्य अवस्था में उपस्थित था।

रात्रि व्यतीत हुई और प्रभात हुआ।

अग्नि कुण्ड को चन्दन की लकड़ी से भर दिया गया था। मंच पर श्रीराम, लक्ष्मण, लव कुश सहित अनेक राजा आरुढ़ हो गये थे। चारों ओर बांधे हुए मचानों पर हजारों नगर निवासी बैठे हुए थे तथा देवर्षि नारद और सिद्धार्थ भी आकाश में थे।

श्रीराम ने सेवकों को आज्ञा दी:--'अग्नि प्रज्जवलित करो।' सेवकों ने कुण्ड में भरी हुई चन्दन की लकड़ी के चारों ओर आग लगा दी। धधकती हुई ज्वालायें निकलने लगी।

सीताजी एक अलग मंच पर ध्यान मग्न होकर बैठी थी। परमेष्ठि-नमस्कार के ध्यान में मग्न थी। श्रीराम सीताजी की ओर तथा कुण्ड में से निकलती हुई ज्वालाओं की ओर देखते थे। उनके मन में कँपकपी आ गई ''' ''' उन्हें विचार आया:—

'अहो! मैंने यह कैसी विषम ''''' अत्यन्त विषम परिस्थिति खड़ी कर दी? यह ''''' मैथिली महासती है ''' निःशंक होकर यह अग्नि में प्रवेश करेगी ''''' और जिस प्रकार दैव की गति विचित्र होती है, उसी प्रकार दिव्य की गति भी विषम होती है '''''कभी कभी सच्चा मनुष्य भी मारा जाता है''''' कदाचित सीता ''' '''' राम का हृदय चीत्कार कर उठा। उन्होंने अपने आपको धिक्कार ''' और विचार आगे बढ़े ''''' सीता के प्रति उनका राग पुनः जाग्रत

हुआ ...... 'यह वही वैदेही है कि जिसने मेरे साथ वन में भटकना पसंद किया था ...... मैं इसे अकेला छोड़ कर गया था और रावण उठा कर ले गया था ...... मेरी ही गलती से इसका अपहरण हुआ था। बाद में मैंने लोगों के अपवाद से बचने के लिए इसे त्याग दिया था ...... और आज पुनः मैं ही इसे अग्नि में ......धधकति अग्नि में झोंक रहा हूँ।

श्रीराम का मन विचार मन्थन में था ही कि सीताजी अपने आसन से खड़ी होकर अग्निकुंड के पास पहुँच गई।

उन्होंने श्वेत वस्त्र धारण किए थे। मुख परिपूर्ण स्वस्थता थी। हृदय में सतीत्व की दृढ़ता और निर्भयता थी।

भीषण अग्नि ज्वालाओं के समक्ष निर्भय सीताजी आंखें बंद कर परमात्मा अरिहन्त का ध्यान करने लगी।

चारों ओर का कोलाहल शांत होगया। सबके जीव अधर हो गये। उसी समय सीताजी की गम्भीर ध्वनि सुनाई पड़ी।

'हे चारों दिशाओं के लोकपालों! और लोगों! सुनो यदि मैंने राम के अलावा अन्य पुरुष की अभिलाषा की हो, तो यह अग्नि मुझे प्रज्ज्वलित कर दें और यदि मैंने राम के सिवाय और किसी अन्य पुरुष की अभिलाषा न की हो तो वह अग्नि पानी हो जाए। शीतल जल बन जाए।'

नमस्कार महामन्त्र का स्मरण किया।

और...... अग्निकुंड में छलांग मार दी। परन्तु सीताजी छलांग मारे, उसके पूर्व ही क्षण भर में हों इन्द्र के सेनापति ने

अग्नि को शांत करदी । जैसे ही सीताजी ने छलांग लगाई.......वैसे ही कुण्ड लबालब पानी से भर गया ।

निर्मल जल से सुशोभित सरोवर में एक विशाल कमल उग आया । वह देव निर्मित था । सीताजी उस पर बैठी थी ।

मानो साक्षात् लक्ष्मी देवी !

चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया । महासती सीता की जय जयकार होने लगी । परन्तु सरोवर का पानी उबलने लगा । जिस तरह समुद्र में ज्वार आता है, उसी तरह सरोवर में ज्वार आ गया । चारों ओर पानी फैलने लगा ..... भयंकर आवाजें आने लगी ।

पानी ऊंचे बंधे हुए मंचों तक पहुँच गया । सबों को डूब जाने का भय लगा । विद्याधर तो उड़कर आकाश में खड़े हो गये । परन्तु बेचारे मानव क्या करें । उन्होंने महादेवी सीताजी की पुकार की ।

'हे महासती सीता, हमारी रक्षा करो बचाओ ......

सीताजी ध्यानमग्न थी । लोगों का आर्तनाद सुनकर आँखें खोली ...लोगों की भयग्रस्त स्थिति देखी । श्रीराम, लक्ष्मण भय-भ्रांत बन गये थे । सीताजी ने पानी पर हाथ रख कर उसे पीछे दबाया । सरोवर शात ,होगया । अनेक कमलों से सुशोभित हो गया ।

आकाश में नारद, सिद्धार्थ आदि नाच उठे; देवों ने पुष्पवृष्टि की ।

'अहो शील ! अहो शील ! सीताजी के शील का अपूर्व प्रभाव । देवों ने दिव्य ध्वनि की । लोगों ने आकाश को जयध्वनि से गुंजायमान कर दिया ।

सबसे अधिक आनन्द का अनुभव हुआ लव और कुश को ! उनकी आंखें हर्षाश्रुओं से भर गई हृदय गद्गद् होगया " दोनों भाइयों ने एक दूसरे के सामने देखा खड़े हुए""और सरोवर में कूद पड़े ।

सीताजी ने दोनों पुत्रों के मस्तक पर हाथ रखें गोद में लेकर स्नेह बरसाया ""(स्नेहाभिषिक्त किया ।)""सीताजी के दोनों ओर लव और कुश बैठ गये । ऊंचे मंचों पर बैठे हुए लोगों ने यह अद्भुत दृश्य देखा """ दोनों पुत्रों सहित सीताजी अत्यन्त सुशोभित हो रही है। राम, लक्ष्मण का हृदय भी यह चित्र देख कर गद्गद् हो गया ।

देवों ने सीताजी के पास तक पहुँचने का मार्ग बना दिया ।

""और आकाश में सीताजी के सतीत्व की जय जयकार करते हुए, महासती को पुनः पुनः नमस्कार करते हुए अपने अपने स्थानों पर चले गये ।

श्रीराम सिंहासन से उठ कर सीताजी की ओर बढ़े ।

लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भामंडल, सुग्रीव आदि ने भी श्रीराम का अनुसरण किया। सीताजी के पास पहुँच कर सबों ने नमस्कार किया और अनेक सतीत्व को भक्ति भाव पूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित की। श्रीराम का हृदय पश्चाताप से व्याकुल हो रहा था, और लज्जा के कारण वे सीताजी के सामने भी नहीं देख सकते थे ।

श्रीराम के नेत्र स्नेहपूर्ण थे, तथापि वे वेदना से भरपूर थे । वे बोले :

'हे देवी, नगर निवासी लोग स्वभाव से ही असद् (मिथ्या) दोष उद्भावना करने वाले लोग होते हैं । मैंने उनके कहने में आकर

तेरा त्याग किया। भयंकर पशुओं से भरे हुए घनघोर वन में ...... हे देवी, तू तेरे सतीत्व के प्रभाव से ही जीवित रही...... हे वैदेही तूने बहुत सहन किया है ... मैंने बहुत कष्ट दिया है ...... बाकी था ... जो 'दिव्य, करवाया ... तेरा दिव्य सतीत्व लोगों के समक्ष प्रतीत हो गया। देवों ने सान्निध्य किया ... है मैथिली, मुझे क्षमा कर दे मैं सर्व अपराधों की क्षमा चाहता हूं ... आ, इस पुष्पक विमान में आरुढ़ हो जा ...'

अयोध्या चल और पूर्व में जिस प्रकार तू मेरे मन, तन, नयन को सुख प्रदान करती थी, उसी प्रकार से पुनः मुझे सुख प्रदान कर, प्रसन्नता प्रदान कर ...'

श्रीराम के शब्दों ने सबों के नयन सजल कर दिये ... परन्तु सीताजी के मुख पर गंभीरता बढती ही गयी। उनका हृदय कोई दृढ़ संकल्प कर रहा था ... उनका मन संसार से अलिप्त होने को लालायित हो रहा था।

'हे आर्य-पुत्र, आपका कोई दोष नहीं है ... लोगों का भी दोष नहीं है ...! अन्य किसी का भी दोष नहीं ... दोष है मेरे ही पूर्वजन्म कृत कर्मों का ... मैंने पूर्व के जीवनों में ... पूर्वभवों में ऐसे पाप किए होंगे ... उन पापों से कर्म बन्ध हुआ होगा ... इस भव में वे उदय हुए ... मेरे पाप कर्म उदय होवें, तब आपके समान महापुरुष के हाथों से भी मुझे दुःख ही मिले ... इसमें आपका दोष नहीं माना जा सकता।

परन्तु इन कर्मों का ... आठों प्रकार के कर्मों का क्षय ... नाश करने का मैंने संकल्प किया है। मैं अब पुनः पश्चाताप नहीं चाहती हूं। जब आप मुझे लंका से लेकर आये, तब मैं पुण्यकर्मों के विश्वास पर रही ... अन्त में इन्हीं कर्मों ने मुझे धोखा दिया। यह संसार ही ऐसा है। जहां तक चार गति रूप संसार में जीव भटकता है, वहां

तक ये कर्म उसे सताते ही रहते हैं""इसलिए अब मैं इन कर्मों का क्षय करने वाली पवित्र प्रव्रज्या""चारित्र अंगीकार करूंगी""संसार का त्याग करूंगी" मैंने हृदय से संकल्प कर लिया है"

सीताजी कमल पर से नीचे उतरी""अपने ही हाथों से मस्तक क बालों का लुचंन कर बाल श्रीराम को सुपुर्द कर दिए,""श्रीराम स्तब्ध होगये, पर किंकर्तव्यमूढ़ होकर यह दृश्य देखते रहे""लव और कुश माता के इस आकस्मिक संकल्प से भौंचक्के रह गये"" किसी को भी कुछ भी नहीं सूझता था।

श्रीराम मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े""उनकी मूर्छा दूर होवे उसके पहले ही सीताजी वहां से चलकर केवल ज्ञानी मुनीवर 'जय भूषण' के वहाँ पहुँच गईं। महामुनि को प्रार्थना की :

'मुझे चारित्र देकर भवसागर से पार उतारो।'

महामुनि ने सीताजी को चारित्र दिया। सीताजी साध्वी बन गईं। महामुनि ने सीताजी को 'सुप्रभा' नामक श्रेष्ठ साध्वी जी के सुपर्द कर दी।

सीताजी ने अपना शेष जीवन तपश्चर्या के चरणों में समर्पित कर दिया" ज्ञान-ध्यान और मौन के साथ विविध प्रकार की दुष्कर तपश्चर्या से कर्मों का क्षय करना प्रारंभ कर दिया।

श्रीराम की मूर्छा दूर करने में श्रीराम, लक्ष्मण आदि सभी लग गये थे,""

लव और कुश ने माता साध्वी को अश्रुपूर्ण नेत्रों से वन्दना

न रागो न च द्वेषभावोऽस्ति कश्चित्
समाधिस्थ चित्तेन दीक्षा गृहीता ।
अहो धन्य धन्या सती साऽस्ति सीता
प्रयातोऽनलः शीततां यत्प्रभावात् ॥१॥

॥ श्रीरस्तु ॥ शांतिरस्तु ॥

॥ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

